१

आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-४ * दीसम्बर-२०२३

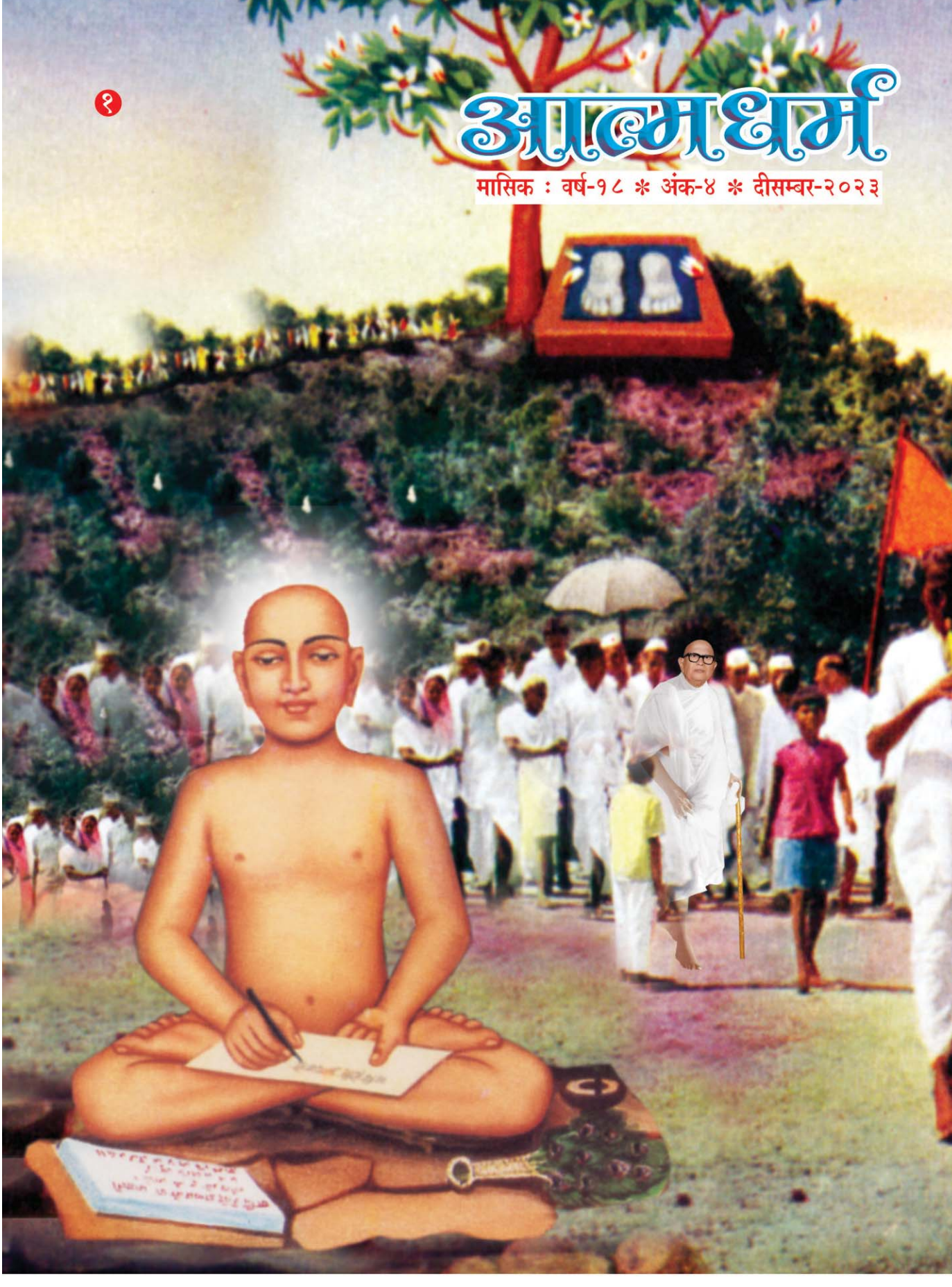

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• सिद्ध भगवंत, सिद्धपनेके कारण, साध्य जो आत्मा उसके प्रतिच्छन्दके स्थान पर हैं, जिनके स्वरूपका संसारी भव्य जीव चिंतवन करके उसी समान अपने स्वरूपको ध्याकर, उन्हीं जैसे हो जाते हैं और चारों गतियोंसे विलक्षण जो पंचमगति है, उसको पाते हैं।६। (श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार-टीका, गाथा-१)

• जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ, वही परमात्मा है—यह समझकर हे योगिन! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।७। (श्री योगीन्द्रदेव, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-७६)

• द्वादशांगका तथा प्रत्येक पूर्वका सार यही कहा गया है कि, यद्यपि मेरा आत्मा शरीर सहित है तथापि निश्चयसे यह आत्मा, परमात्मा है—ऐसा जानना योग्य है।८। (श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-७६)

• जैसे सिद्ध आत्मा हैं वैसे ही भवलीन (संसारी) जीव हैं इसलिये (वे संसारी जीव सिद्धात्माओंके समान) जन्म-जरा-मरणसे रहित और आठ गुणोंसे अलंकृत हैं।९। (श्री कुन्दकुन्दाचार्य, नियमसार, गाथा-४७)

• यह आत्मा ही निश्चयसे श्री जिनेन्द्र परमात्मा है। हे भाई! तारण-तरण स्वरूप जिनेन्द्रदेव जिसको जिन कहते हैं, ऐसे अपने आत्मारूपी अरिहंत परमात्मा है।१०। (श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड, भाग-१, पृष्ठ-३४९)

• मेरा आत्मा, परमात्मा है, वह परम ज्योति प्रकाश स्वरूप है, जगत में ज्येष्ठ है, महान है, तो भी वर्तमानमें देखनेमात्र से रमणीक और अन्तमें नीरस ऐसे इन्द्रियोंके विषयोंसे ठगाया गया हूँ।११। (श्री शुभचंद्राचार्य, ज्ञानार्णव, प्रकरण-३१, श्लोक-८)

• हे भव्य! जब स्फटिकमणिकी जिनमूर्तिके समान अन्तरमें अपने शुद्धात्माको तू भायेगा तब कर्मजाल स्वयमेव क्षणमें ही कट जायेंगे और आत्मभावोंमें तू परिशुद्ध हो जायेगा।१२। (श्री नेमीश्वर वचनामृत शतक, श्लोक-३८)

• अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँचों परमेष्ठी इस आत्माके ही परिणाम हैं, इसलिये आत्मा ही मुझे शरण है।१३। (श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव, बारह अनुप्रेक्षा, गाथा-१२)

वर्ष-18
अंक-4

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2079
December
A.D. 2023

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

* अबंधस्वरूप भगवानको बंधन कैसा ? *

ध्रुव वस्तु राग तो करे नहीं लेकिन धर्मकी दशाको भी न करे। राग कर्ता और धर्मदशा कार्य तो ऐसा है नहीं लेकिन ध्रुव कर्ता और धर्मदशा कार्य ऐसा भी नहीं है, वह स्वतंत्र है पवित्र शुद्ध भगवान आत्मा है उसने रागका स्पर्श भी किया नहीं है ऐसा अबंधस्वरूप ध्रुव भगवान आत्मा होने पर भी उसे बंध क्यों है ?–क्योंकि उसको अबंधस्वरूप वस्तुकी महिमा नहीं, ज्ञान नहीं इसलिये उसे अज्ञानकी ही महिमा है। पवित्र शुद्ध चैतन्य भगवानको बंध कैसा ?–क्योंकि पवित्र वस्तुका ज्ञान नहीं इसलिये उसे अज्ञानकी महिमाका बंध है।

* औपशमादिक पांच भावोंमें मोक्षका कारण कौन ? *

पुनः विशेष कहा जाता है :–औपशमिकादि पांच भावोंमें कौनसे भावसे मोक्ष होता है उसका विचार किया जाता है।

वहाँ औपशमिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक और औदयिक यह चार भावों पर्यायरूप है और शुद्ध पारिणामिक (भाव) द्रव्यस्वरूप है। यह परस्पर सापेक्ष ऐसा द्रव्यपर्यायद्वय (द्रव्य और पर्यायका संयुक्तपना) वह आत्म-पदार्थ है।

मुनिलिंग अरु गृहीलिंग—ये नहिं लिंग मुक्तीमार्ग है। परमागम
चारित्र-दर्शन-ज्ञानको बस मोक्षमार्ग प्रभू कहे॥४१०॥ श्री समयसार

वहाँ, प्रथम तो जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ऐसे तीन प्रकारके पारिणामिक भावोंमें, शुद्धजीवत्व ऐसा जो शक्तिलक्षण पारिणामिकपना वह शुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रित होनेसे निरावरण और 'शुद्धपारिणामिकभाव' ऐसी संज्ञावाला जानना; वह तो बंध-मोक्षपर्याय परिणति रहित है। किन्तु जो दशप्राणरूप जीवतत्त्व और भव्यत्व, अभव्यत्वद्वय वह पर्यायार्थिक-नयाश्रित होनेसे 'अशुद्धपारिणामिकभाव' संज्ञावाला है।

प्रश्न :–'अशुद्ध' कैसे ? उत्तर :–संसारीओंको शुद्धनयसे और सिद्धोंको तो सर्वथा ही दशप्राणरूप जीवतत्त्वका और भव्यत्व-अभव्यत्वद्वयका अभाव होनेसे।(गुजराती टीका)

अब विशेष अर्थात् खास कहनेमें आता है कि उपशमादि पांच भावोंमेंसे किस भावसे आत्माको पूर्णानंदकी दशारूप मोक्ष होता है।

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, पारिणामिक एवं उदय–यह पांच भावोंमें शुद्ध पारिणामिक भाव वह ध्रुव है, वह द्रव्यरूप है और अन्य चार भावों पर्याय है। उदयभाव है वह विकारी भाव है और अन्य दूसरी तीन पर्यायें हैं वे राग रहित निर्मल पर्याय है। उदयभाव वह राग है वह मोक्षका कारण नहीं लेकिन उपशम आदि तीन भाव जो रागरहित निर्मल पर्याय है वह मोक्षका कारण है ऐसा यहाँ कहना है।

पांच भावोंमें जो शुद्ध पारिणामिकभाव वह द्रव्यस्वरूप है और दूसरे चार भाव पर्यायरूप है और उसका जुड़ना आत्म-पदार्थ है। त्रिकाली द्रव्य वह पारिणामिकभाव और दूसरी चार पर्याय–उसका जुड़ना वह प्रमाणका आत्मा है। द्रव्य-पर्यायका जुड़ना वह प्रमाणका आत्मा है, वह निश्चयका आत्मा नहीं है।

※ बंधमोक्षपर्यायपरिणति रहित शुद्ध पारिणामिकभाव ※

प्रथम तो जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व यह तीन प्रकारका पारिणामिकभाव है। यह तीन प्रकारका पारिणामिकभावमें शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षण त्रिकाल पारिणामिकपना है। वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनयाश्रित होनेसे त्रिकाल निरावरण है, उसमें चार प्रकारकी पर्याय भी नहीं उसमें आवरण किसका हो ?

जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व यह तीन प्रकारके पारिणामिकभावमें शुद्ध

यों छोड़कर सागार या अनगार-धारित लिंगको।
चारित्र-दर्शन-ज्ञानमें तू जोड रे! निज आत्मको॥४११॥

जीवत्वशक्ति त्रिकाल है। इन तीनोंमें जो त्रिकाली शुद्धशक्ति है–ध्रुव है वह शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षण पारिणामिकपना है। चार प्रकारकी पर्याय बिनाका त्रिकाली वस्तु कि जो सम्यग्दर्शनका विषय है, धर्मका ध्येय ऐसी जो त्रिकाली वस्तु है वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनयाश्रित होनेसे निरावरण है।

उत्पाद-व्ययरूप उपशमादि चार पर्यायें बिनाका त्रिकाली वस्तु शुद्ध है। उदय है वह मलिन उत्पाद-व्ययवाली पर्याय है और उपशम आदि तीन भावों निर्मल उत्पाद-व्ययवाली पर्याय है, मलिन और निर्मल उत्पाद-व्ययसे रहित शुद्ध जीववस्तु है वह शुद्ध पारिणामिकभाव संज्ञावाला है–वह शुद्धपारिणामिकभाव है।

* जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व 'अशुद्धपारिणामिकभाव' है *

जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्वमें दशप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व-अभव्यत्व यह तीनों पर्यायनय आश्रित है। दशभावप्राणसे आत्मा जीवित है वह व्यवहाराश्रित पर्यायनयका कथन है। दशभावप्राणसे जीवित है वह अशुद्ध पारिणामिकभावसे कहा गया है और भव्यत्व, अभव्यत्व वह पर्यायनयके आश्रित है। भव्यत्व, अभव्यत्व त्रिकालीमें नहीं है लेकिन वे पर्यायके आश्रित है। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्वमें जो त्रिकाली वस्तु है वह परम शुद्ध स्वभावभावसे पूर्ण है। जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व यह भेद है वह पर्यायनयाश्रित होनेसे 'अशुद्धपारिणामिकभाव' संज्ञावाला है–अशुद्ध पारिणामिक नामवाला है।

प्रश्न :–भव्यत्व, अभव्यत्व और दशभावप्राणरूप जीवत्व अशुद्ध कैसे ?

उत्तर :–वह शुद्धनयसे संसारीको तो है ही नहीं, भव्यत्व आदि तो पर्यायनयसे कहा है और वस्तु तो त्रिकाल है, उसमें दसभावप्राण, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि नहीं है। अशुद्ध भावप्राण, भव्यत्व, अभव्यत्व त्रिकालीमें है ही नहीं। पुनः सिद्धोंको तो वे सर्वथा ही नहीं है, पर्यायमें भी नहीं है। संसारीको वस्तुमें और सिद्धको तो वस्तुमें और पर्याय दोनोंमें वह नहीं है। संसारी प्रत्येक प्राणीको पर्यायदृष्टिसे देखे तो वह दशभावप्राण है वह शुद्धनयसे वस्तुमें है ही नहीं और सिद्धोंको तो सर्वथा नहीं इसलिये अशुद्ध कहा है।

(क्रमशः) *

तूं स्थाप निजको मोक्षपथमें, ध्या, अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्यमें॥४१२॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३० (गाथा-२७)

* बंध-मोक्षका स्वरूप *

अब यहाँ २७वीं गाथामें मुनिराज ममताको टालकर निर्मम होनेका मार्ग बतलाते है :

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥२७॥
निर्मम एक विशुद्ध हुं, ज्ञानी योगी-गम्य,
संयोगी भावो बधा, मुजथी बाह्य अरम्य॥२७॥

मैं एकरूप हूँ, मेरा स्वरूप एकरूप है, मुझे रागके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। एक विकल्प भी मेरे स्वरूपमें नहीं। मैं तो अनंत ज्ञान, आनंद स्वरूप एकरूप हूँ और परसे निर्मम हूँ।

अस्तिसे देखो तो, मैं एक शुद्ध ज्ञानघन हूँ और नास्तिसे देखो तो मैं परके सम्बन्ध बिनाका और परके ममत्व बिनाका निर्मम हूँ। पुनः मैं शुद्ध हूँ और ज्ञानी हूँ अर्थात् बिलकुल शुद्ध ज्ञानस्वभावका भंडार हूँ।

मेरा आत्मस्वभाव योगीन्द्रों द्वारा जाननेलायक है। मेरा शुद्ध स्वभावको योगी ही जान सकते हैं, लेकिन योगी कौन ? कि स्वरूपमें एकत्व करे और रागसे एकत्व तोड़ दे वह योगी है। वे योगी और योगीन्द्रो अर्थात् केवली द्वारा मैं जाननेलायक हूं।

संयोगजनित जितने पदार्थों हैं वह देव, मन, वाणी, दया, दान, पुण्य-पापकी वृत्ति आदि मेरे मूल स्वभावमें नहीं, संयोगजनित है...मनुष्यदेहको प्राप्त करके करनेलायक हो तो यह समझ है उसके बदले लोग बाह्यके त्याग आदिको धर्मको मानकर उसमें रुक गया है।

सब साधन बंधन हुए, रहा न कोई उपाय,
सत् साधन समझा नहि, वहाँ बंधन कहाँ जाय ?

सत् साधन समझे बिना दूसरे सभी प्रयत्न व्यर्थ है।

मैं तो एक शुद्ध ज्ञानघन हूँ उसके अतिरिक्त जितने विकल्प है वे सभी मेरेसे सर्वथा

बहुभांतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थीलिंग जो।
ममता करे, उनने नहीं जाना 'समयके सार' को॥४१३॥

भिन्न है। जैसे परमाणु मेरेसे बिलकुल पृथक् वस्तु है वैसे पंचमहाव्रतके विकल्प या किसी भी प्रकारके विकल्पों मेरे स्वरूपसे सर्वथा भिन्न है। ऐसा निश्चित करके स्वरूपमें एकत्व करना वह निर्मम होनेका उपाय है। सत्को प्राप्त करनेका एकमात्र साधन यह ही है, अन्य कोई साधन नहीं है।

सर्व दुःखक्षयका उपाय

* स्वसे एकत्व-परसे विभक्तरूप भेदज्ञान *

पूज्यपादस्वामीकृत इष्टोपदेशकी २७वीं गाथा चल रही है।

शिष्यका प्रश्न था कि आत्मा परसे निर्मम किस प्रकार होता है ? निर्मम होनेका उपाय क्या है ? इस प्रश्नका गुरु उत्तर देते हैं।

मैं द्रव्यार्थिकनयसे एक हूँ, सामान्य द्रव्यस्वरूपसे मैं त्रिकाल रहनेवाला एक हूँ। मैं ज्ञानी और योगीओंको स्वसंवेदनगम्य हूँ। संयोगीभाव वे सब मेरेसे तद्दन भिन्न है।

यहाँ प्रमाणके विषयभूत पर्याय सहित द्रव्यकी बात नहीं है। लेकिन द्रव्यार्थिकनयके विषयभूत द्रव्यकी बात है। सामान्य ध्रुव स्वभावकी बात ली है। सामान्य और विशेषरूप द्रव्य वह प्रमाणका द्रव्य है। यहाँ द्रव्यार्थिकनयसे सामान्य एकरूप त्रिकाल ध्रुव एक स्वभाव वह मैं हूँ ऐसा दर्शाया है।

वस्तुदृष्टिसे-सामान्यदृष्टिसे–ध्रुवके लक्षवाली दृष्टि से मैं एक हूँ। पूर्वकी पर्याय और भविष्यकी पर्यायमें मैं तो कायम एकरूप रहनेवाला हूँ। भूत-भविष्य और वर्तमानकी प्रत्येक पर्यायमें धारावाही एकरूप रहनेवाला मैं आत्मा हूँ।

प्रथम अल्प अभ्यास होना चाहिये, यह तो मूल तत्त्वकी बात है भाई ! अभ्यास बिना किस प्रकार समझमें आये ?

शिष्यका प्रश्न है कि परद्रव्यसे निर्ममत्व होनेसे चिंतवनका उपाय क्या ? उसका यहाँ उत्तर दिया जाता है। परसे पृथक् हो–निर्मम हो तभी शांति, सुख और समाधान हो यह मुद्दाका प्रश्न है। समझने जैसी बात है।

जैसे मोतीके हारमें प्रत्येक मोतीमें परोया हुआ धागा एक है। मोती पृथक्-पृथक् है लेकिन धागा एक है, वैसे आत्मा भी भूतकी पर्याय हो गई, वर्तमान की हो रही है और भविष्यकी होगी इन सभी पर्यायोंमें एक पंक्तिमें एकरूप रहनेवाला सदृश स्वभावी हूँ।

व्यवहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षके पथमें कहे।
निश्चय नहीं माने कभी को लिंग मुक्तीपंथमें॥४१४॥

द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे कहता है कि मैं निर्मम हूँ। शरीर, कर्म, पुण्य-पापके भाव आदि मेरे और और उनके मिथ्या अभिप्रायसे मैं रहित हूँ। मैं उसके स्वरूप नहीं और वे मेरे स्वरूप नहीं। इसलिये उसका कार्य मेरे स्वरूप नहीं है और मेरा स्वरूप उसके कार्यमें जाता नहीं है।

आहाहा... भाई ! जैसे वस्तु स्वसे एकत्व है और परसे भिन्न है उसी प्रकार उसका स्वीकार करना कि यह शरीरादि मेरे नहीं और मैं उसका नहीं। वह मेरे स्वरूप नहीं। मैं उसके स्वरूप नहीं हूँ। यह निर्मम होनेका उपाय है। परसे भिन्न जिस स्वरूप आत्मा है ऐसा उसे मानना, उससे विरुद्ध शरीरादि परद्रव्य मेरे और मैं उसका ऐसा जो अभिप्राय है वह मिथ्यादर्शन-मिथ्याशल्य है।

भाई ! तेरा हो वह तेरेसे पृथक् नहीं होता और जो पृथक् होता है वह तेरा नहीं होता इसलिये तेरेसे भिन्न चीजमें तुझे अच्छा लगे-मजा आये ऐसा तेरा स्वरूप नहीं है। जो मेरा स्वरूप नहीं उसमें मुझे आनंद आता नहीं है। मेरे स्वरूपमें ही मुझे मजा आती है। ऐसा दृढ़ निश्चय रखना।

शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, रागादि हो तो मुझे ठीक हो, ऐसा जो मानता है उसका अर्थ यह है कि 'वे मेरे है और मैं उसका हूँ' ऐसी मान्यता वह मिथ्यादर्शन शल्य है। सुंदर शरीर, करोड़ोंकी संपत्ति, आज्ञाकारी पुत्र आदिको देखकर उसमें रुक जाना वह मिथ्यादर्शन शल्य है। अन्यको मैं कुछ अनुकूल होऊँ, उसके कार्यमें मदद करूँ यह अभिप्राय भी मिथ्या है। ''परद्रव्य मेरे और मैं उनका'' ऐसा अभिप्राय वह ममता है और उससे रहित वह निर्मम है।

''मैं उसका और वह मेरे'' ''मैं सभीकी सुविधामें मददरूप होऊँ और मेरी सुविधामें वे मदद करे'' अर्थात् कि परद्रव्यको मैं सुखदुःख दूँ और वे मुझे सुख-दुःख दे–ऐसा मूढ अभिप्राय ज्ञानीको होता नहीं है। ज्ञानी ऐसे अभिप्रायसे रहित स्वयंको निर्ममस्वरूप जानते है।

''पर मेरे और मैं उसका'' ऐसी विपरीत भ्रमणा तुझे कहाँसे आई ? भाई ! तेरे तत्त्वके भीतर परद्रव्यका लेशमात्र लेप नहीं और परतत्त्वमें तेरे तत्त्वका लेश भी लेप नहीं। फिर भी तूने ऐसा अभिप्राय उपस्थित किया है। धर्मी कहता है कि तू उस अभिप्रायसे रहित तत्त्व है उसकी दृष्टि कर !

अरे ! मेरेमें मेरा (तत्त्व) है वह परसे नहि और जो परका है वह मेरेमें नहीं। मेरा आनंद

यह समयप्राभृत पठन करके, जान अर्थ रु तत्त्वसे।
ठहरे अरथमें जीव जो, वह सौख्य उत्तम परिणमे॥४१५॥

मेरे पास है। मेरा आनंद किसी चीजको देखनेसे या उसके संयोगसे नवीन उत्पन्न होता नहीं है। मेरा आनंद त्रिकाल मेरे पास ही है और परपदार्थकी स्वतंत्र दशा उसके पास है। ऐसे धर्मी स्वयंको विपरीत अभिनिवेश रहित जैसा है वैसा मानते है। देखो ! यह धर्मीके लक्षण ! यह किया और वह किया और माने कि धर्म हो गया–यह धर्मीके लक्षण नहीं हैं।

आत्मा एक है और निर्मल है यह दो बिन्दु हुए। अब तीसरा बिंदु–मैं शुद्ध हूँ ऐसा ज्ञानी जानता है। शुद्धनयकी अपेक्षासे मेरा महिमावंत भगवान तीनोंकाल शुद्ध ही है ऐसा शुद्धनय देखता है। जड़कर्म और भावकर्म जो पुण्य-पाप, व्यवहाररत्नत्रयके विकल्प उससे मैं रहित हूँ इसलिये शुद्ध हूँ।

मैं तो ज्ञानस्वरूपी भगवान अनाकुल आनंदका नाथ हूँ। शुद्धनयरूपी ज्ञानचक्षु भगवान आत्माको राग और निमित्त-कर्मसे रहित शुद्ध देखता है।

अब चौथा बिंदु —मैं केवलीओं और योगीओं द्वारा जाननेलायक हूँ। अर्थात् कि मैं कैसा हूँ? कि केवली सर्वज्ञ भगवंतों द्वारा मेरी अनंत पर्यायों सहित मैं जाननेमें आ सके ऐसा हूँ। केवली मुझे इस प्रकार जान सके ऐसा मैं हूँ। देखो तो, ''केवलीगम्य'' शब्द रखकर कितनी गजब-गम्भीर बात रख दी है ! वाह, टीका भी गजब है ! मैं मुझे गम्य हूँ और केवलीको गम्य हूँ।

मैं ध्रुव और ''परद्रव्य मेरे और मैं उनका'' ऐसे मिथ्या अभिप्रायसे रहित, शुद्धनयकी अपेक्षासे राग और कर्मसे रहित शुद्ध हूँ ऐसा जो अनंतपर्याय सहित केवलज्ञानीके ज्ञानमें जाननेमें आता है और श्रुतकेवलीओं द्वारा भी मैं मात्र शुद्ध उपयोगरूप जाननेमें आता हूँ ऐसा हूँ और मैं भी मेरे श्रुतज्ञान द्वारा मुझे शुद्ध उपयोगमात्र जानता हूँ। ज्ञानी कहते हैं कि मेरी उपस्थिति शुद्धउपयोगमात्र है ऐसा मैं जानता हूँ। मेरा स्वरूप जैसा है वैसा मैं जानता हूँ।

परसे निर्ममत्व अर्थात् विभक्त होनेका और स्वमें एकत्व करनेका यह उपाय कहा। मम अर्थात् एकत्व और निर्ममत्व अर्थात् विभक्त; मैं परसे विभक्त हूँ। मेरा स्वरूप ध्रुव सदा एकरूप ज्ञानस्वभावी है। मैं स्वयंको जाननेलायक हूँ। केवलज्ञानी और अनंतपर्यायों सहित जान रहा हूँ ऐसा मैं जानता हूँ। इस प्रकार मैं मेरेसे जाननेमें आता हूँ ऐसा स्वसंवेद्य हूँ। (शेष देखे पृष्ठ १३ पर)

नमकर अनन्तोत्कृष्ट दर्शनज्ञानमय जिन वीरको। कहुँ नियमसार सु केवलीश्रुतकेवलीपरिकथितको॥१॥	परमागम श्री नियमसार

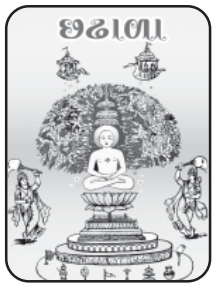

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा - ७)

निर्जरा और मोक्षतत्त्वमें अज्ञानीकी भूल तथा मिथ्याज्ञानका स्वरूप

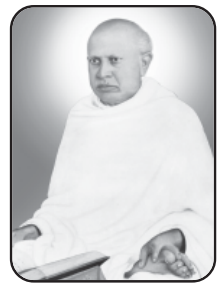

रोके न चाह निजशक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।७।।

पुनः कोई एक ईश्वर है और उसमें यह जीव मिल जाता है–ऐसा भी नहीं। मोक्षमें अनंत आत्माएँ भिन्न-भिन्न रहकर, प्रत्येक आत्मा अपनी अपनी निजशक्तिका परम-ईश्वर है; आत्मा स्वयं ही स्वयंका ईश्वर है। आत्माकी ज्ञानादि अनंत शक्तियाँ पूर्ण प्रकट हो उसका नाम ईश्वरपना है और इसलिये ही ईश्वरको अनंत शक्तिवाला कहा जाता है।

पुनश्च कोई दुर्मति ऐसा मानता है कि ज्ञानका अभाव हो जाना उसका नाम मोक्ष;– किन्तु ऐसा मोक्षका स्वरूप नहीं है। मोक्षदशा तो पूर्ण ज्ञान-आनंदसे परिपूर्ण है। ज्ञानकी पूर्णता वह मोक्ष है।–उसके बदले ज्ञानकी शून्यताको मोक्ष मानता है–वह तो अधिक विपरीतता है। मोक्ष होने पर जो ज्ञानकी शून्यता हो जाय तो तो आत्मा जड हो गया !–ऐसे मोक्षकी कौन इच्छा करे? अपना अभावकी कौन इच्छा करे? मोक्षके लिये रागादि पर भावोंसे छूटनेका है, कोई ज्ञानादि निजगुणसे छूटनेका नहीं है। किन्तु अज्ञानीकी भ्रमणाका पार नहीं है। स्वयं कौन और अपने गुण कैसे–उसकी भी उसे खबर नहीं। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ'। मोक्षका स्वरूप समझनेमें जिनकी भूल हो उसे मोक्षके उपायमें भी भूल ही है।

जीवोंको सात तत्त्व में भूल अनादिकी है, अर्थात् कुगुरुओंके उपदेश बिना भी अनादिसे उसे मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान वर्तता है। उपयोगस्वरूप आत्मा मैं हूँ, और मेरी चाल पाँच अजीवद्रव्योंसे पृथक् है–ऐसा अपना भिन्न स्वरूपको समझे तो अनादिकी भूल मिटे।

है मार्गका अरु मार्गफलका कथन जिनशासन विषें।
है मार्ग मोक्षउपाय अरु निर्वाण उसका फल कहें।।२।।

* जीव स्वयं उपयोगस्वरूप है–उसे वह जानता नहीं।

* देहादि अजीव स्वयंसे पृथक् होने पर भी उसे अपना मानता है।

* रागादि आस्रव दुःखदायी होने पर भी उसे सुखरूप मानकर सेवन करता है।

* पुण्य-पाप दोनों बंधनरूप होने पर भी पुण्यबंधको अच्छा मानता है।

* संवरके कारणरूप जो ज्ञान-वैराग्य, वह उसे कष्टदायक लगता है।

* इच्छाके निरोध द्वारा निजशक्तिको प्रगट करनेरूप निर्जराको वह जानता नहीं।

* परम निराकुल आनंदस्वरूप मोक्षदशाको वह पहिचानता नहीं।

—इस प्रकार सातों तत्त्वोंमें अज्ञानीकी भूल होती है। कोईबार शास्त्रसे सात तत्त्वोंको जान ले और शास्त्र अनुसार कहे, लेकिन स्वयंके शुद्धस्वरूपके वेदन बिना उसे तत्त्वमें सूक्ष्म भूल रह जाती है। अंतरमें स्वयंके शुद्धस्वरूपका अनुभव करे तभी तत्त्वकी यथार्थ श्रद्धा और यथार्थ ज्ञान होता है; और पश्चात् ही चारित्र होता है जिसके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति होती है।

अहा ! मोक्षदशा तो सर्वथा आनंदरूप है,—जिसमें आकुलताका सर्वथा अभाव है; अकेला जीव स्वयंकी शुद्धता सहित सदाकाल बिराजता है, जिन्हें राग-द्वेष नहीं, शरीर नहीं, इच्छा नहीं, इन्द्रियों बिना परिपूर्ण ज्ञान है, और पदार्थ बिना परिपूर्ण सुख है। इन्द्रियों बिनाका पूर्णज्ञान कैसा हो उसकी कल्पना भी अज्ञानीको आती नहीं। क्योंकि वह तो इन्द्रियज्ञानका ही अनुभव करनेवाला है, इसलिये मोक्षमें अतीन्द्रिय ज्ञानका जो अस्तित्व है वह उसे भासित नहीं होता, अर्थात् मोक्षमें उसे ज्ञानका अभाव लगता है ! अहा, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुखका कोई अपार माहात्म्य है, उसका स्वरूप पहिचाने तो अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंदका अंश स्वयंमें भी प्रकट हो जाय। इन्द्रियज्ञानसे उसका स्वरूप समझमें आये ऐसा नहीं है। जो अकेला रागमें और इन्द्रियज्ञानमें ही मग्न है वह तो कोई रागादिको साधन बनाकर उससे मोक्षसुख साधनेका प्रयत्न करता है किन्तु मोक्षके यथार्थ उपायकी उसे खबर नहीं है।

इस प्रकार तत्त्वकी भूल वह मिथ्यात्व है; वह मिथ्यात्वसहितका जो कुछ जानपना या शास्त्र शिक्षा आदि है वह सभी अज्ञान है–मिथ्याज्ञान है; और ऐसे मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान सहितका जो कुछ शुभाशुभ आचरण है वह सभी मिथ्याचारित्र है। ऐसा मिथ्याश्रद्धा-

जो नियमसे कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह 'सार' पद विपरीतके परिहार हित परिकथित है॥३॥

मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र वह जीवको महान दुःख देनेवाला है। इसलिये हे भाई ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसका अभाव कर। तेरे यथार्थ स्वभावकी श्रद्धा तूने कदापि की नहीं, उसका ज्ञान किया नहीं और उसमें स्थिरता की नहीं; मिथ्यात्वादि विपरीत भावोंको सेवन करके दुःखको ही भोगा है। अब उससे छूटनेके लिये संतोंके इस उपदेशको तू अंगीकार कर।

मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञानके कारण जीवको तत्त्वोंके स्वरूपमें किस किस प्रकारकी भूल होती है उसे समझाया है। अतः स्वयंकी भूल समझकर उस भूलको टालना और यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान प्रगट करके मोक्षमार्गमें लगना। अब मिथ्याचारित्र क्या है और उसे भी संक्षिप्तमें समझाकर उसे छोड़नेका उपदेश देते हैं।

* मिथ्याचारित्रका स्वरूप *

जीवको दुःखदायक ऐसे मिथ्याश्रद्धा तथा मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहा, अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहते हैं—

इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह॥८॥

जिसको तत्त्वमें भूल है, उसका श्रद्धा और ज्ञान मिथ्या है, उसे निजस्वरूपमें प्रवृत्तिरूप यथार्थ चारित्र तो होता नहीं; वह तो मिथ्यात्व सहित बाह्य विषयोंमें ही प्रवर्तता है; उसे मिथ्याचारित्र जानना। यह मिथ्यात्वादि नैसर्गिक है अर्थात् कि कुगुरु आदिके निमित्त बिना जीव निजस्वरूपको भूलकर ऐसी भूल कर रहा है; उसे अगृहीत कहते है। कुगुरु आदिके निमित्तसे जो विशेष मिथ्यात्वादि भाव जीव ग्रहण करता है उसे गृहीत कहते है। उनका वर्णन अब आगे करेंगे।

शुभाशुभ दोनोंसे पार चैतन्यस्वभाव है उसमें रमण करना वह सच्चा चारित्र है, वह वीतरागभावरूप है, ऐसे सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका जीवने पूर्वमें कभी सेवन किया नहीं। अज्ञानी होकर मंदकषाय किये, शुक्ल लेश्या भी की नहीं; लेकिन शुक्ललेश्या वह कोई धर्म नहीं। शुक्लध्यान पृथक् चीज है और शुक्ल लेश्या पृथक् चीज है। अज्ञानीको शुक्लध्यान भी नहीं होता है लेकिन शुक्ल लेश्या किसीको होती है। किसीको शुक्ल-लेश्या

है नियम मोक्ष-उपाय, उसका फल परम निर्वाण है।
इन तीनका ही भेदपूर्वक भिन्न-भिन्न विधान है॥४॥

हो फिर भी अज्ञानी होता है, किसीको कृष्ण लेश्या हो फिर भी ज्ञानी होता है; इसलिये लेश्या परसे किसीको ज्ञानी-अज्ञानीपना निश्चित् नहीं होता है।

हे जीव ! संसारके सर्व दुःखोंका कारण यह मिथ्यात्वादि ही है, अन्य कोई दुःख देनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर उसका त्याग करना चाहिये–किस प्रकार ? कि सच्चा तत्त्वज्ञान द्वारा वह मिथ्यात्वादि छूटता है। यथार्थ तत्त्वज्ञान बिना इन्द्रिय विषयोंकी इच्छा कदापि छूटती नहीं। चाहे शुभराग और शुभविषय हो, किन्तु वे इन्द्रिय विषय ही है, उसमें मग्न होनेवाला जीव अतीन्द्रिय स्वविषयको भूल जाता है। इन्द्रियविषय अनुकूल मिलने पर मानों मैं सुखी हो गया, और शुभराग होने पर मानों कि मैं सुखी हो गया–किन्तु भाई, यह तो मिथ्याचारित्र है, उसमें सुख कैसा ? उसमें तो दुःख है। इस प्रकार यह अगृहीत मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान-चारित्रको दुःखके कारण समझकर उसका त्याग करों।

अब उसके अतिरिक्त, कुगुरु-कुदेव-कुधर्मके सेवनसे उत्पन्न जो गृहीत मिथ्यात्वादि उसका स्वरूप बतलाकर उसे छोड़नेका उपदेश देते हैं। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ९ का शेष भाग) (इष्टोपदेश - प्रवचन)

मेरे द्रव्य-गुण-पर्यायसे सभी परद्रव्य पृथक् है। सर्वथा सर्वप्रकारसे सभी परद्रव्य मेरेसे पृथक् है। मेरा सबसे निराला ही है।

प्रभु ! तेरा स्वरूप तेरेसे स्वसंवेद्य है। अनंत पर्यायों सहित भगवान तेरे द्रव्यको जानता है उसे भी तूं स्वयं जान सकता है।

मुमुक्षु :–ऐसी बात कभी सुनी नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री :–यह बात पहले थी ही नहीं। बाह्यके झंझटमें लोगोंकी जिंदगी चली जाती थी। अंतरकी लायकात बिना सुननेको भी कहाँसे मिले ? लायकात हो तभी यथार्थ तत्त्व सुननेको मिलता है।

गाथामें कहा कि ''मैं निर्मम एक विशुद्ध, ज्ञानी योगीगम्य'' मैं स्वयं ज्ञानी-योगी हूँ। मुझे मेरी आत्मा ज्ञानमें गम्य है ऐसा भाव इसमें आ जाता है। शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप भाव आदि सभी मेरेसे अन्य है, मुझे और उसे कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसे अभिप्राय सहित आत्माको जानना उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। सर्वज्ञ परमेश्वरके अतिरिक्त यह बात तीनकाल तीनलोकमें कहीं भी नहीं हो सकती। (क्रमशः) ✻

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

ज्ञेय अधिकार

यह अनुभवप्रकाश है। आत्माका स्वभाव त्रिकाल ज्ञान-आनन्द है। वह परमें तथा विकारमें अटककर पर्यायमें विकारका अनुभव करता है वह उसका सच्चा स्वरूप नहीं है। त्रिकाली स्वभावकी प्रतीति और पहिचान करके आनन्दका अनुभव करना वह धर्म और मोक्षमार्ग है। आत्माके ज्ञानानन्द स्वरूपका अनुभव किसे होता है? कि आत्मा ज्ञान है, वह स्व–परका ज्ञाता है और आत्मा तथा अनंत पदार्थ वे ज्ञेय हैं, परपदार्थ ज्ञानका ज्ञेय हैं और आत्मा उसका ज्ञाता है। ''ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं'' अर्थात् ज्ञात होने योग्य पदार्थ वे ज्ञेय हैं। इससे आगे बढ़कर दूसरा कोई सम्बन्ध माने तो वह अज्ञानी है। परवस्तुएँ ज्ञानमें ज्ञात होती हैं, परन्तु परवस्तुएँ आत्माको कहीं लाभ–हानि नहीं करती और आत्मा उन ज्ञेयोंको जानता है, परन्तु उन्हें दूर या निकट करे ऐसा उसका स्वरूप नहीं है।

ज्ञेय पदार्थ कैसा है? उसका विशेष वर्णन करते हैं। पदार्थकी तीन अवस्थाएँ–दशाएँ–प्रकार हैं—द्रव्य, गुण और पर्याय। इन द्रव्य–गुण–पर्यायमें समस्त ज्ञेयपदार्थोंका समावेश हो जाता है, इसके सिवा चौथी कोई वस्तु जगतमें नहीं है। द्रव्य कहा उसमें आत्मा स्वयं भी आ जाता है, आत्मा स्वयं भी ज्ञेय है। अपने तथा परके द्रव्य–गुण–पर्यायको जाने ऐसा ज्ञानका स्वभाव है, परन्तु परकी अवस्थाको करता नहीं है, भोगता नहीं है, ग्रहता नहीं है, छोड़ता नहीं है। त्रिकाली द्रव्यको, अनन्तगुणोंको तथा पर्यायको ज्ञान जानता है। राग पर्यायको भी जानता है; परन्तु रागको करूँ या छोड़ूँ—ऐसा ज्ञानका स्वभाव नहीं है। ज्ञान तो जाननेवाला ही है, ऐसी प्रतीति कर उसे भेदज्ञान होकर आत्माका अनुभव होता है। यहाँ त्रैकालिक द्रव्यको 'द्रव्यअवस्था' कहा है, क्योंकि द्रव्य भी त्रिकाल द्रव्यरूप अवस्थित रहता है, इसलिए उसे भी अवस्था कहा जाता है। वस्तुके द्रव्य–गुण–पर्याय इन तीनोंको यहाँ अवस्था कहा है।

द्रव्यका द्रव्यरूपसे टिका रहना, गुणका गुणरूपसे टिका रहना और प्रत्येक

रे! आप्त-आगम-तत्त्वका श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
निःशेषदोषविहीन जो गुणसकलमय सो आप्त है॥५॥

अवस्थाका अपने–अपनेरूप रहना—इसप्रकार द्रव्य–गुण–पर्याय यह तीनों ज्ञानके ज्ञेय हैं, परन्तु वहाँ ज्ञानके कारण ज्ञेय नहीं है और ज्ञेयके कारण ज्ञान नहीं है। ऐसा जाने तो परज्ञेयका स्वामी न बने और स्वज्ञेयका स्वामी रहकर धर्म करे।

वस्तु है, जो वस्तु है वह स्वयंसिद्ध है, उसमें ज्ञेय होनेका धर्म है और आत्मामें जाननेका धर्म है। उसके बदले परके साथ कर्त्ता–कर्मपना माने तो उसे अधर्म और मिथ्यात्व होता है। आत्माके सिवा शरीर, लक्ष्मी आदि जड़पदार्थ हैं, वे ज्ञानका ज्ञेय हैं। परन्तु उन पदार्थोंमें आत्माका सुख नहीं है। वे पदार्थ मुझे सुखरूप या दुःखरूप हैं—ऐसा माने तो वह भ्रमणा है। परद्रव्यमें ऐसी शक्ति नहीं है कि इस आत्माको वे सुख–दुःख दे सकें। हाँ, उनमें ज्ञानका ज्ञेय होनेकी शक्ति है। ऐसा समझनेसे ज्ञान तटस्थ रह गया और परमें इष्ट–अनिष्टपनेकी मान्यता नहीं रही। इसलिए वीतरागभावरूप शान्ति रही। उसका नाम धर्म और सुख है।

यह लकड़ी ऊपर उठी वह उसके परमाणुओंका पर्यायधर्म है। वह हाथके कारण ऊपर नहीं उठी है, उसीप्रकार ज्ञानके कारण या रागके कारण भी अन्यका कार्य नहीं होता। ज्ञानका उसे जाननेका धर्म है; वहाँ ऐसा माने कि मेरे कारण यह लकड़ी ऊपर उठी, तो वह मिथ्यादृष्टि है, उसे परसे भिन्न होकर ज्ञानस्वरूपका अनुभव नहीं होता।

आत्माके अनन्तगुणोंमें ज्ञानगुणकी प्रधानता है। वह ज्ञान समस्त पदार्थोंका निर्णय करनेके स्वभाववाला है और पदार्थ उसके ज्ञेय हैं। ऐसा समझे उसे परसे भिन्नता होकर आत्माका अनुभव होता है।

द्रव्य अवस्था मुख्य है। मूलवस्तु न हो तो उसके शक्तिरूप गुण और उसकी पर्यायका निर्णय नहीं होगा। यदि आत्मा, परमाणु आदि पदार्थ स्वशक्तिवानपना धारण न करे तो गुण–पर्यायपना सिद्ध नहीं होगा। मिठास हो और उसे धारण करनेवाले पदार्थकी सत्ता न हो तो उसका वस्तुपना नहीं हो सकता। द्रव्य अवस्थारूप नित्यवस्तुके बिना (आधाररूप वस्तुके बिना) गुण नहीं होता। ज्ञानस्वभावका सामर्थ्य ही ऐसा है कि यथावत् स्व–पर ज्ञेयका द्रव्य–गुण–पर्याययसे अवस्थितपना जाने। वस्तु है वह अपने ही गुण–पर्यायमें व्याप्त होनेवाली है, वह किसी अन्यके कारण नहीं है।

है दोष अष्टादश कहे रति, मोह, चिन्ता, मद, जरा।
भय, दोष, राग, रु जन्म, निद्रा, रोग, खेद, क्षुधा, तृषा॥६॥

ज्ञान स्व–पर ज्ञेयको जानता है और ज्ञेयमें ज्ञात होनेकी योग्यता है। वस्तु है वह अपने गुण–पर्यायमें व्यापक है। रागपर्याय है उसका आधार सम्पूर्ण गुण वह चारित्र है। पर्यायरूप रागअंशका उस चारित्र गुणमें व्याप्त होना है, किसी कर्म या निमित्तका उसमें व्याप्त होना नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक गुणकी स्वतंत्रता है। इस प्रकार प्रत्येकका स्वतंत्रपना है। जो भी संसारपर्याय निमित्तसे हुई मानता है उसने आत्माका अपने गुण–पर्यायमें स्वतंत्ररूपसे व्याप्त होना नहीं माना है।

केवली भगवानके समीप क्षायिक सम्यक्त्वकी पर्याय उदित हो, वहाँ ज्ञानी जानता है कि अपने श्रद्धागुणकी पर्यायमें मेरी व्याप्ति है, अन्यसे उसकी व्याप्ति नहीं हुई है। शरीरकी नग्नदशा हुई उसे ज्ञान जानता है कि उस शरीरकी पर्यायका आधार–कारण वह परमाणु द्रव्य है, इसलिए परमाणु ही उस पर्यायका कर्ता और व्यापक है। परवस्तु तो ज्ञानका ज्ञेयमात्र है; वह अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है, क्योंकि ऐसा पदार्थका स्वभाव ही नहीं है। जो परवस्तुसे सुख–दुःख या राग–द्वेष होना मानता है वह मूढ़ है। जो भी पदार्थ है उसमें उसके गुण–पर्याय व्याप्त हैं, उसको जाननेके सिवा ज्ञानकी अन्य कोई शक्ति नहीं है। किसी ज्ञेयमें इष्ट–अनिष्टपनेकी छाप नहीं लगी है, परन्तु वह मात्र ज्ञात होने योग्य है।

द्रव्यका निर्णय करनेके पश्चात् गुणकी दशाके अस्तित्वका निर्णय होता है। स्वभाववान है तो उसका स्वभाव क्या है ऐसा जाना जा सकता है। गुणके बिना गुणी नहीं होता। दूसरे से पृथक्ताका निर्णय गुण द्वारा–स्वभाव द्वारा होता है।

प्रत्येक पदार्थ गुणोंका समुदाय है। है वह किसी परसे नहीं हो सकता। है उसका कोई ईश्वर–उत्पादक, रक्षक या नाशक नहीं है। प्रत्येक पदार्थ पृथक्–पृथक् है। निमित्त है वह भिन्न वस्तु ज्ञेयरूप है। निमित्त है तो मुझे ज्ञान या राग होता है—ऐसा माननेवालेने वस्तुस्थितिको नहीं जाना है। ज्ञानी कहते हैं कि—''निमित्तसे लाभ–हानि नहीं हो ऐसा स्वभाव है,'' वहाँ अज्ञानी कहता है कि ''आप निमित्तको नहीं मानते, निमित्तसे लाभ–हानि होते हैं ऐसा मानो तो आपने निमित्तको माना कहा जाएँगा !'' परन्तु यह बात झूठी है।

वस्तुमें पर्यायधर्म है, इसलिए उसमें प्रतिसमय परिणमन होता है। यदि पर्याय–अवस्था नहीं हो तो वस्तु परिणमित कैसे होगी? वस्तु स्वयं अपने पर्यायधर्म से ही परिणमती

सब दोष रहित, अनन्तज्ञानदृगादि परम विभवमयी।
परमात्म है वह, किन्तु तद्विपरीत परमात्मा नहीं॥७॥

है, परके कारण परिणमन नहीं होता—ऐसी तत्त्वकी मर्यादा है। अरे जीव ! तू धैर्य रख, धैर्य रखकर तत्त्वकी मर्यादाको जान, तभी शान्ति होगी और दुःख मिटेगा। इसके सिवा अन्य उपायसे शान्ति हो ऐसा नहीं है। वस्तुमें पर्याय होनेका धर्म है। संसार पर्याय होनेकी योग्यता जीवमें है। यदि जीवमें वह योग्यता न हो तो कर्म क्या करवा देगा ? और शिष्यमें वह योग्यता न हो तो क्या गुरु उसे दे देंगे ? किसीके कारण किसीकी पर्याय नहीं होती; शिष्य अपने पर्यायधर्म से ही ज्ञानरूप है, और जीव अपनी पर्यायसे ही संसार या मोक्षरूप परिणमता है। तथा निर्दोष आहारके कारण जीवका मुनिपना बना रहता है ऐसा भी नहीं।

प्रतिक्षण नवीन–नवीन पर्यायरूप होना वह भी पदार्थका अवस्था धर्म है; किसी अन्य वस्तुके कारण नहीं। मिट्टीसे घड़ा बनता है, वहाँ मिट्टीमें वैसी पर्याय–अवस्था है। कुम्हार उस अवस्थाको परिणमित नहीं करता। उस–उस पर्यायमें बना रहना ऐसा वस्तुका अवस्थाधर्म है। अव=निश्चयरूप; स्थ=बना रहना; जिस समयकी जो पर्याय है वह निश्चित ही है; द्रव्य उस समय निश्चयसे उस अवस्थारूप परिणमित होनेवाला है; ऐसा उसका अवस्थाधर्म है, वह ज्ञेय है और आत्माका स्वभाव उसे जानने का है। उसके बदले उल्टा–सीधा करना जो मानता है उसने ज्ञानका अनादर किया है, वह मिथ्यादृष्टि होकर अनन्तसंसारमें भटकता है। आत्माके रागसे शरीर नहीं चलता और शरीरके चलनेसे राग नहीं होता। सब अपनी–अपनी अवस्थामें परिणमित होते हैं। निमित्त आया इसलिए वह अवस्था हुई—ऐसा नहीं है। भगवान ! तुझे शान्ति चाहिए हो तो ज्ञेयोंको यथावत् जान। विपरीतरूपसे जानेगा उसे शान्ति प्राप्ति नहीं होगी; जो पदार्थको यथार्थ जानेगा उसे सम्यग्ज्ञान होकर शान्ति प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी। अहो ! एक सिद्धान्तमें तो तीनकाल–तीनलोकके पदार्थोंका पृथक्करण कर दिया। पर्यायमें पर्यायधर्म न हो तो वह परिणमित कैसे होगा ? प्रत्येक पदार्थ अपने पर्यायधर्मसे ही परिणमता है, वह ज्ञानका ज्ञेय है। अन्य किसीके कारण पदार्थ परिणमता है—ऐसा माने वह मूढ़ है। इसलिए पदार्थ द्रव्य–गुण–पर्यायस्वरूप है—ऐसा ज्ञेय है। लकड़ी ऊपर उठी वह अपने पर्यायधर्मसे उठी है; हाथके कारण, रागके कारण अथवा जीवके कारण नहीं उठी है; यदि उनके कारण उठी हो तो आकाश क्यों ऊपर नहीं उठता ? क्योंकि उसमें वैसा पर्यायधर्म नहीं है। इसलिए सब अपने–अपने पर्यायधर्मसे ही परिणमते हैं। ऐसी वस्तुस्वरूपकी मर्यादा है। ऐसे वस्तुस्वरूपको जानना वह सम्यग्ज्ञान है। (क्रमशः) ✻

परमात्मवाणी शुद्ध, पूर्वापर रहित विरोध है।
आगम वही, देती वही तत्त्वार्थका उपदेश है॥८॥

❀ प्रतिष्ठा महोत्सव और आत्माकी समझ ❀

यह तो भगवानकी प्रतिष्ठाका महोत्सव चल रहा है। भगवानने जैसा कहा वैसे आत्माको पहिचानना वह ही यथार्थ महोत्सव है।

वसुबिन्दु–प्रतिष्ठापाठमें जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा करानेवाले श्रावकका वर्णन आता है। वह श्रावक श्रीगुरुके पास जाकर आज्ञा मांगते है कि हे स्वामी! मैं इस लक्ष्मीको कुलटा स्त्रीके समान और अनित्य जानता हूँ, मैं अपनी लक्ष्मीका राग कम करके उसका सद्-उपयोग करूँ ऐसा कोई कार्य बतलाईये। श्री अरिहंत भगवानके पंचकल्याणक करानेकी मेरी भावना है। तब श्रीगुरु कहते हैं कि– हे भव्य! धन्य है। तुम अपने कुलमें सूर्य समान हो; ऐसा कहकर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा और पंचकल्याणक महोत्सवकी आज्ञा प्रदान करते है। यह महोत्सव अनंत भवोंका नाश करनेवाला है। यहाँ बाह्य क्रियाकी या अकेले शुभरागकी बात नहीं है, लेकिन स्वयंके ज्ञातादृष्टास्वभावके भानपूर्वक उसमें लीन होकर तृष्णा कम करने पर अनंत अवतारका नाश हो जाता है। परमार्थसे तो आत्मस्वभावकी जो अनंतज्ञानमय संपत्ति है उसे प्रकट करके रागका व्यय करना वह ही महोत्सव है। महोत्सव करनेवाला स्वयंका राग कम करनेके लिए स्वयंकी संपत्तिका व्यय करे। वास्तवमें लक्ष्मीका व्यय आत्मा कर सकता नहीं लेकिन राग कम करनेका उपदेशके लिये लक्ष्मीके व्ययकी बात व्यवहारसे की है।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं॥१॥

यहाँ, समयसारके प्रारम्भमें ही आचार्य भगवान अंतरमें सिद्धपनेको स्थापित करते है। प्रथम तो आत्मामें सिद्धभगवानकी स्थापना करते है वह ही वास्तविक समयसारकी प्रतिष्ठा है। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा; स्वयंके आत्मामें 'राग वह मैं' ऐसी मिथ्या मान्यताको उखाड़कर मैं 'सिद्धभगवान समान शुद्ध आत्मा हूँ।' ऐसी प्रतीति करके शुद्ध आत्माकी स्थापना करना उसका नाम समयसारकी प्रतिष्ठा है। इस गाथामें आचार्य भगवानकी ध्वनि है कि मैं सिद्ध हूँ, आप सिद्ध हो। श्रोताओंको कहते है कि–हे जीव! आप भी सिद्ध हो, आपके आत्मामें सिद्धपना समाहित हो जाय ऐसा सामर्थ्य है, जो ज्ञान सिद्धको जानकर स्वयंमें सिद्धपनेकी स्थापना करता है वह जीव रागका या अपूर्णताका आदर करता नहीं और परका कार्य मैं करता हूँ और पर मुझे मदद करते है ऐसा मानता नहीं है। किन्तु स्वयं स्वयंके स्वभावकी ओर झुककर अनुक्रमसे सिद्धदशाको ही प्रकट करता है, पश्चात् उसे भवभ्रमण रहता नहीं है।

❀ ❀ ❀

❋ भगवानका जन्मकल्याणक और आत्मभान ❋

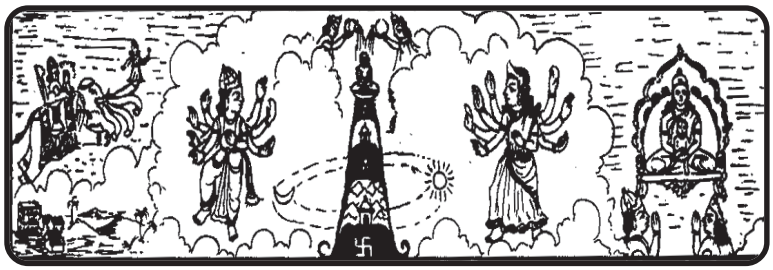

शुद्ध आत्माके भानसहित ही श्री तीर्थंकरदेवका आत्मा जन्म लेता है। देव-देवीयाँ सेवा करते हैं, रत्नोंकी वृद्धि होती है और इन्द्रों जन्मकल्याणक मनाते है—यह सभी पुण्यका ही प्रभाव है। लेकिन ऐसा पुण्यबंध किसको होता है?—कि जिन्हें आत्माका भान हो और पुण्यकी भावना न हो उन्हें ही रागसे ऐसे पुण्यबंध हो जाता है। तीर्थंकरप्रकृतिका कर्मबंध होता है वह भी आत्माके धर्मका फल नहीं है लेकिन वह प्रकृति धर्मीकी भूमिकामें ही बंधती है, आत्मज्ञान होनेके पश्चात् ही तीर्थंकरप्रकृतिका बंध होता है। तीर्थंकर भगवानका जन्म होने पर तीनलोकमें दिव्य प्रकाश होता है। आज यहाँ भगवानके जन्मकल्याणक महोत्सवका दृश्य हुआ। यहाँ तो उपचारसे निक्षेप करके कल्याणक बतलाते है। साक्षात् भगवानके पंचकल्याणक तो कोई विशेष पुण्यवंतको ही देखनेको मिलते है; और उसमें वास्तवमें तो जो जीव चैतन्यस्वभावके भान सहित देखता है उसने ही साक्षात् भगवानके कल्याणक देखे—ऐसा कहा जाता है। अन्यने तो मात्र भगवानके बाह्य देहादिको ही देखा है, लेकिन यथार्थ भगवानको देखा नहीं है। यहाँ तो पंचकल्याणक महोत्सवमें भी आत्माके समझकी ही प्रधानता है। पंचकल्याणकमें गर्भकल्याणक और जन्मकल्याणकके दृश्य हुए अभी दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक आदि दृश्य होंगे वे सभी देखने जैसे है।

चैतन्यचिह्न

पंचकल्याणकके उत्सवमें जो शुभराग होता है वह आत्माका लक्षण नहीं है लेकिन 'चैतन्य' वह ही आतमाका चिह्न है; उस चैतन्यचिह्नको जाने बिना धर्म होता नहीं है। जैसे लौकिकमें अंक और अक्षरके ज्ञान बिना खातावही नहीं लिखी जा सकती, वैसे धर्ममें 'अंक' अर्थात् चैतन्यचिह्न और 'अक्षर' अर्थात् अविनाशी ध्रुवस्वभाव, उसे जाने बिना धर्म होता नहीं है। ज्ञानलक्षण द्वारा अविनाशी आत्माको जानकर उसमें एकाग्रतासे ही आत्मामें धर्मका नाम अंकित होता है। ❋ ❋ ❋

वैराग्य भावना

(श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

अब, कहते हैं कि जो तत्त्वज्ञानी, सब परिग्रहका त्यागी होता है, वह स्त्री आदिके वश नहीं होता है—

सो ण वसो इत्थिजणे, सो ण जिओ इन्दिएहिं मोहेण।
जो ण य गिण्हदि गंथं, अब्भंतर-बाहिरं सव्वं॥२८२॥

अर्थ :—जो पुरुष, तत्त्वका स्वरूप जानकर बाह्य और अभ्यंतर सब परिग्रहणको ग्रहण नहीं करता है, वह पुरुष, स्त्रीजनके वश में नहीं होता; वह ही पुरुष, इन्द्रियोंसे और मोह (मिथ्यात्व) कर्मसे पराजित नहीं होता है।

भावार्थ : संसारका बंधन परिग्रह है; इसलिये जो सब परिग्रहको छोड़ता है, वह ही स्त्री, इन्द्रिय-कषायादिके वशीभूत नहीं होता है। सर्वत्यागी होकर शरीरका ममत्व नहीं रखता है, तब वह निजस्वरूपमें ही लीन होता है।

भाई ! तीनोंकाल सनातन निर्ग्रंथ मुनिमार्ग एक ही प्रकारका है। अंतर परिणतिमें तीन कषाय चौकड़ीका अभाव होनेसे, नग्न-दिगम्बर वीतरागी संत, हजारों बार छठवें-सातवें गुणस्थानमें वर्तते हैं। अभी महाविदेहक्षेत्रमें मुनिधर्मका यह एक ही प्रकार है—ऐसे परम जितेन्द्रिय मुनि मुख्य हैं। उन्हें स्वरूपमें स्थिरता करनेसे राग छूट जाता है। चतुर्थ गुणस्थानवाला जीव, मिथ्यात्वको जीतनेवाला है। यहाँ आचार्यदेव स्वयं भावलिंगी मुनि हैं, वे सदा जितेन्द्रिय में वर्तते हुए वीतरागताकी भावना भाते हैं और जो ऐसी समझपूर्वक भावनामें वर्तता है, वह इन्द्रियवश होकर मिथ्यात्वसे नहीं जीता जाता अर्थात् वह स्वयं मिथ्यात्वको जीत लेता है।

आत्मा ज्ञान और आनंदस्वरूप है। राग अथवा जड़की क्रियाका अंश भी मेरा नहीं है—ऐसा ज्ञायक आत्माका भान होना, वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। तत्पश्चात् ज्ञायकस्वभावकी दृष्टिपूर्वक बारह भावनाएँ भाते-भाते, रागका अभाव हो जाता है और वीतरागता बढ़ती जाती है—यही संवर-निर्जरा है।

षट् द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुणपर्यायसे संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

यहाँ कहते हैं कि सर्वज्ञदेवने जीवादि तत्त्वोंका जैसा स्वरूप कहा है, तद्नुसार जो नहीं जानता, वह जीव विषय-कषायके वश होता है। जो जीव चैतन्यस्वभावकी दृष्टि करके उसकी भावना भाता है, वह जीव विषय-कषायके वश नहीं होता।

देखो, सबसे बड़ा परिग्रह मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व ही सबसे बड़ा बंधन है। जो जीव, सिद्धसमान निज आत्माका भान करके सम्यग्दर्शन प्रकट करता है, उसके मिथ्यात्वका परिग्रह छूट जाता है। भले ही कोई बाहरमें स्त्री इत्यादिका त्यागी होकर बैठा हो परंतु अंतरंगमें निष्परिग्रही चिदानंदस्वभावकी दृष्टि नहीं है तो वह मूढ जीव, विषयोंके ही वश पड़ा है।

जो जीव अंतरंगमें चैतन्यस्वभावके वश नहीं है, वह इन्द्रियोंके वश हुए बिना नहीं रह सकता। जिसे भगवान आत्माके चिदानंद, अकषाय शांतस्वभावका पता नहीं है, वह जीव कषायोंके वश है। चैतन्यस्वभावकी दृष्टिके पश्चात् उसकी विशेष भावनासे, उसमें लीनता द्वारा जिसने रागादि-परिग्रहको भी छोड़ दिया है—ऐसे मुनिवरोंको संसारका बंधन नहीं होता। संत-मुनिराजोंको बाह्यमें वस्त्रादि परिग्रह नहीं होता और अंतरंगमें मिथ्यात्व-रागादिका परिग्रह नहीं होता—ऐसे संत निजस्वरूपमें लीन होते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। (क्रमशः) ✻

प्रत्येक तत्त्वकी स्वाधीनता

एक आत्मा है वह अपने स्वरूपके सद्भावरूपसे और अन्य अनंत आत्मा उनके ही जड़ पदार्थोंके अभावरूपसे विद्यमान है। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व अन्य अनंत पदार्थोंके अभावसे विद्यमान है। एक द्रव्यके स्वरूपकी बाह्य ही अन्य द्रव्य विद्यमान है, कोई द्रव्यमें अन्य द्रव्यका प्रवेश नहीं है, अर्थात् एक पदार्थमें दूसरे अनंत तत्त्व कुछ भी करे—ऐसा तीनकालमें बन सकता नहीं है। वस्तुके द्रव्य-गुण तो त्रिकाल एकरूप है, अर्थात् उसमें कुछ करनेका नहीं है। यहाँ द्रव्य-गुणकी बात नहीं लेकिन पर्यायकी बात है, पर्याय नई-नई उत्पन्न होती है, वे पर्यायें द्रव्यके आधारसे ही होती है। नवीन पर्याय निमित्तके कारणसे होती है—ऐसा अज्ञानीको भ्रम है। एक द्रव्यकी वर्तमान हालत अन्य द्रव्यकी वर्तमान हालतमें कुछ करे यह बात अज्ञानीने मानी हुई है, वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है।

—पूज्य गुरुदेवश्री (पंचकल्याणक प्रवचन, पृ. ९६)

उपयोगमय है जीव, वह उपयोग दर्शन-ज्ञान है।
ज्ञानोपयोग स्वभाव और विभाव द्विविध विधान है॥१०॥

❋ संसार का मूल मिथ्यात्व है ❋

स्वयं के परिणामको सुधारनेका उपाय करना उपयुक्त है, इसलिये सर्वप्रकार के मिथ्यात्वभाव को छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना उपयुक्त है, क्योंकि संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य कोई पाप नहीं है। एक मिथ्यात्व और उसके साथ अनंतानुबंधीका भाव होने पर इकतालीस कर्मप्रकृतियोंका बंध तुरन्त नाश हो जाता है और स्थिति अंतःक्रोडाक्रोडी सागर की रह जाती है और अनुभाग भी अल्प ही रह जाता है। अल्पकाल में ही वह मोक्षपदको प्राप्त होता है, लेकिन मिथ्यात्वका सद्भाव होने पर अन्य अनेक उपाय करने पर भी मोक्ष होता नहीं है। इसलिये किसी भी प्रकारसे, सर्व प्रकारसे इस मिथ्यात्वका नाश करना उपयुक्त है।

कर्म आदि परके कारण जीवके परिणाम खराब होना, सुधार होना नहीं होता है, लेकिन स्वयंके उद्यम से ही परिणाम खराब होते है, सुधरते है, इसलिये ऐसा उपदेश है कि स्वयं के परिणामको सुधारनेका उद्यम उपयुक्त है।

इसलिये सर्व प्रकारके मिथ्या भावोंको छोड़कर स्वभाव सन्मुख होकर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। सम्यग्दर्शन ही परम हितका उपाय है। सम्यग्दर्शन बिना शुभभाव करे फिर भी कल्याण नहीं है, क्योंकि संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य कोई पाप नहीं है। सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व और अनंतानुबंधीका अभाव हुआ, और जीवकी इतनी शुद्ध परिणति हुई कि उस जीवको ४१ कर्मप्रकृतियोंका तो बंध तो होता ही नहीं है और पूर्वकर्मकी स्थिति अंतःक्रोडाक्रोडी सागर ही रहती है, एवं घातिकर्म आदिमें अनुभाग भी अल्प ही रह जाता है। देखो, यह सम्यग्दर्शनका प्रताप! सम्यग्दर्शन होने पर अल्पकालमें अवश्य मोक्षपदको प्राप्त होता है और मिथ्यात्ववाले जीवको चाहे कैसे भी उपाय करने पर भी मोक्ष होता नहीं है। इसलिये किसी भी उपाय द्वारा सर्व प्रकार से उस मिथ्यात्वका नाश करके सम्यग्दर्शन प्रकट करना उपर्युक्त है–इस उपायसे जीवका कल्याण होता है।

❋ ❋ ❋

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न : सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् साधुपनेके लिए व्रतादि तो करने पड़ेगे न ?

उत्तर : भाई ! साधुपना कही बाहरसे अथवा व्रतादिके विकल्पोंसे आता नहीं है; अतीन्द्रिय आनन्दकी जमावट हो वह साधुपना है। लेकिन व्रतादि करना हो वह साधुपना नहीं है। आनन्दकी उग्र जमावट होने पर व्रतादिके विकल्प भी सहज ही होते हैं, किन्तु अन्तरमें स्थिरताका होना ही साधुपना है।

प्रश्न : महाव्रतके भाव भले ही बन्धके कारण हों, परन्तु मुनिराजके वे सहज आते हैं, फिर उनका निषेध कैसे ?

उत्तर : महाव्रतके भाव मुनिराजको भले ही सहज आते हों, तथापि वे निषेधने योग्य ही हैं।

प्रश्न : महाव्रत तो महापुरुष पालन करते हैं, इसीलिए उन्हें महाव्रत कहते हैं, उनका निषेध कैसे होगा ?

उत्तर : महापुरुष अन्तरस्वरूपमें स्थिर हुए हैं, उसके साथ व्रतके परिणाम आते हैं, इसलिए उन्हें महाव्रत कहते हैं, परन्तु हैं तो वे बन्धके ही कारण; अतः उनका निषेध किया गया है। समयसार कलशके श्लोक नं. १०८की टीकामें कहा है कि.....व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है; अतः विषय-कषायके समान क्रियारूप चारित्र निषिद्ध है।

प्रश्न : मुनिपनेमें व्रत-तप-शीलादि आचरण करना कहा है। जो कर सकते हैं, उसे तो बन्धनरूप और संसारका कारण कहा, तो फिर मुनियोंको शरण किसका रहा ? मुनिपना किसके आश्रय पलेगा ?

उत्तर : व्रत-तपशीलादि शुभाचरणरूप कर्मका निषेध करते हुए, निष्कर्म अवस्थारूप प्रवर्तते हुए, मुनि कहीं अशरणरूप नहीं है, ज्ञानस्वरूपमें आचरण करनेवाले मुनिको ज्ञान

इन्द्रियरहित, असहाय, केवल वह स्वभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविकज्ञान—सम्यक् और मिथ्याज्ञान है॥११॥

ही शरणरूप है। ज्ञानका शरण लेते हुए मुनिराज परम अमृतका आस्वादन करते हैं, अतः शुभाचरणके निषेधक मुनियोंको ज्ञान ही परम शरणरूप है।

प्रश्न : श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने भी तो महाव्रतोंको पाला था ?

उत्तर : श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने महाव्रतोंको पाला नहीं था, किन्तु महाव्रतोंके विकल्प आये थे उन्हें जाना था, उन विकल्पोंका उनके स्वामित्व नहीं था, उन्हें अपनत्वपने जानते नहीं थे, मात्र परज्ञेयपने जानते थे।

प्रश्न : शास्त्रमें कहीं-कहीं अरिहन्तके आत्मासे भी निज शुद्धात्माको श्रेष्ठ कहा है, वह कैसे ? अपनी तो अपूर्ण अवस्था है, वह उनकी पूर्णावस्थासे भी श्रेष्ठ कैसे ?

उत्तर : निज शुद्धात्मस्वभाव वर्तमानमें ही परिपूर्ण है, उसीका ध्यान करनेको कहा है, यहाँ त्रिकाल शुद्धस्वभावकी दृष्टिसे कथन है, पर्याय यहाँ गौण है। इस आत्माको अरिहंतके लक्षसे रागकी उत्पत्ति होती है; और अपने स्वभावके लक्षसे वीतरागताकी उत्पत्ति होती है, इसलिए इस आत्माके लिए अरिहन्त श्रेष्ठ नहीं, किन्तु अपना शुद्धस्वभाव ही श्रेष्ठ है। जिनकी ओरसे लक्ष छोड़ना है, उनसे तेरा क्या प्रयोजन है ?–सब लक्ष छोड़कर अपने ही चैतन्यस्वभाव सदा पूर्ण है उसका लक्ष बनाकर उसका ही निर्विकल्प ध्यान कर; क्योंकि अरिहन्त अवस्था प्रगट होनेकी सामर्थ्य तो तेरेमें ही भरी है, अतः उसीका ध्यान करके उसीमेंसे प्रगट कर; अन्य पदार्थोंके ध्यानको छोड़–ऐसा उपदेश है।

प्रश्न : देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका विकल्प, उस तरफका ज्ञान अथवा पंचमहाव्रतके विकल्परूप व्यवहाररत्नत्रयका भाव वास्तवमें आत्मा नहीं है–यह तो ठीक; परन्तु वह आत्माकी पर्याय भी नहीं है—यह कैसे हो सकता है ?

उत्तर : उस व्यवहाररत्नत्रयकी पर्यायके साथ आत्माकी अभेदता नहीं है। ज्ञानकी अवस्था होती है, वही आत्माकी पर्याय है और वह ज्ञान आत्माके साथ अभेद होता होनेसे ज्ञान ही आत्मा है और राग अनात्मा है। सम्यग्दर्शनके पूर्व कषायकी मन्दतासे विशुद्धिलब्धि भले हो, परन्तु वह आत्मा नहीं है और सम्यग्दर्शनका वास्तविक कारण भी नहीं है, वह तो राग है। रागकी आत्मामें अभेदता नहीं है, अतः वह वास्तवमें आत्माकी पर्याय नहीं है। रागादिभाव खरगोशके सींगकी तरह जगत्में होवे ही नहीं–ऐसा नहीं है; वे आत्माकी पर्यायमें एकसमयवर्ती सत्रूप हैं, परन्तु आत्माके त्रिकालीस्वभावकी अपेक्षासे वे असत् हैं।

मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान है।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान है॥१२॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *मनुष्यजीवनके कर्तव्यके संबंधमें कुछ कहनेकी कृपा करें।*

समाधान :—मनुष्यजीवनमें ऐसा भेदज्ञान करना है कि चैतन्यतत्त्व जुदा है और यह परद्रव्य जुदे हैं। अंतरमें विभावोंके साथ जो एकत्वबुद्धि हो रही है उसे तोड़नी है। 'मैं भिन्न चैतन्य ज्ञायक हूँ, ज्ञान–आनंदादि अनंतगुणस्वरूप आत्मा हूँ।' उसपर दृष्टि करके 'मैं शाश्वत चैतन्यज्योति हूँ' इसप्रकार बारम्बार उसीका रटन–मनन करनेका है। भेदज्ञान प्रकट करके निर्विकल्पतत्त्व आत्मा है उसकी स्वानुभूति प्रकट करनी है। गुरुदेवने जो बताया है वही करनेका है। एक ही मार्ग है। श्रीमद्जीने कहा है न....''एक हो त्रिकालमें परमारथका पंथ।'' परमार्थका एक ही पंथ है—चैतन्यतत्त्वको पहिचानो, उसीकी स्वानुभूति प्रकट करो, भेदज्ञान प्रकट करो, ऐसा गुरुदेवने कहा है और वही करनेका है।

''इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा सन्तुष्ट रे;
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे''

इसमें सदा प्रीति कर, इसमें प्रीतिवंत बनो, इसमें सन्तुष्ट हो; संतोष इसीमें ही है, अन्यत्र कहीं संतोष नहीं है, अन्यत्र असंतोष है; अन्यत्र कहीं भी तुझे शान्ति नहीं मिलेगी। आत्मामें जो संतोष–शांति–आनंद है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। ''इससे हि बन तू तृप्त'' इसीमें तू तृप्तिको प्राप्त हो; तृप्ति इसीमें है, अन्यत्र कहीं भी नहीं है। तृप्तिपना जो है वह सब आत्मामें ही है। उसीमें तुझे तृप्ति मिलेगी, अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगी। ''उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे'' उसीमें उत्तम सुखकी प्राप्ति होगी। अन्यत्र–बाह्य सुखमें माथामारनेसे नहीं मिलता; सुख आत्मामें ही है; उसीमेंसे वह प्रकट होगा। वही करनेका है।

जितना ज्ञान है उतना आत्मा है। ज्ञायकतासे भरपूर जो ज्ञानस्वरूप आत्मा, वही ज्ञायक है। बस, वही परमार्थस्वरूप आत्मा है, उसे पहिचान। यही कर्तव्य है। उस पदको प्राप्त कर, वह सच्चा पद है। अनेक प्रकारके मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्याय आदि भेद हैं,

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये।
इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल दृग्स्वभाविक मानिये॥१३॥

उन भेदोंपरसे दृष्टि उठाकर एक ज्ञायकपर दृष्टि कर। बस, उस ज्ञायकमें तृप्त हो। उस ज्ञायकमें ही सब कुछ भरा है। अन्य समस्त भेदभावों और विभावोंपरसे दृष्टि उठाकर एक चैतन्यमें दृष्टि कर। गुरुदेवने कहा सो भेदज्ञान–स्वानुभूति प्रकट करके उसीमें तृप्तिका अनुभव कर। उसीमें आनंदका—शान्तिका—ज्ञानका सागर भरा है, और उसमेंसे ही आनंद, ज्ञान आदि उछलेंगे। सर्वस्व उसीमें भरा है। उसीमें बारम्बार दृष्टि, ज्ञान एवं लीनता करनेसे उसमेंसे ही पूर्णताकी प्राप्ति होगी, वही वास्तवमें करनेका है, वही कर्तव्य है। तत्त्वके विचार, शास्त्राभ्यास, देव–शास्त्र–गुरुकी महिमा यह सब एक चैतन्यतत्त्वकी पहिचानके लिये ही करनेका है। वही जीवनका सच्चा कर्तव्य होना चाहिए। गुरुदेवने बहुत कहा है। गुरुदेवका परम उपकार है।

प्रश्न :— *शुभभाव हो तो मनुष्यभव मिलता है न?*

समाधान :—ऐसे भाव रखनेका क्या काम है? जिससे भवका अभाव हो वह भाव प्रकट करनेयोग्य है। कैसा भव मिले? उसपर कुछ (आधार) नहीं है। देवका भव मिले या मनुष्यका भव मिले, वे सब भव ही हैं, उनमें तो आकुलता है। भवमें कहाँ शान्ति है?

प्रश्न :— *सब जीवोंमें इतना सब ज्ञान नहीं होता कि जिससे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो सके। शुभभावोंसे तो पुनः मनुष्यभव प्राप्त होगा, उसमें तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मोक्षमें जायेंगे ऐसी भावना करना क्या योग्य है?*

समाधान :—इस भवमें पुरुषार्थ न करके अगले भवमें करेंगे, ऐसा वायदा करना ठीक नहीं है। स्वयं क्रियाकांडमें पड़ा था और जिन शुभभावोंसे वास्तवमें पुण्यबंध हो उनमें धर्म माना था। शुभभावकी क्रियासे धर्म होता है, ऐसा मानता था, उसके बदले उन सबसे भिन्न आत्मा गुरुदेवने बताया। जिन गुरुने मुक्तिका मार्ग एवं मुक्ति कोई अलग है, अपूर्व है ऐसा बताया, उनका ऐसा यह संयोग मिला, तो उसमें भेदज्ञानपूर्वक सम्यग्दर्शन हो वह अपूर्व है। तथापि वहाँ तक नहीं पहुँचा जा सके तो उसकी भावना, उसका रटन, उसके संस्कार, बारम्बार उसका चिन्तवन कर। ऐसा मनुष्यभव, सच्चे देव–शास्त्र–गुरु, दीर्घ आयुष्य तथा ऐसे गुरुका संयोग मिलना वह एकके बाद एक दुर्लभ है। वह सब वर्तमानमें प्राप्त हो चुका है। शास्त्रमें पं. टोडरमलजी कहते हैं कि ''सब अवसर आ चुका है।'' तू अपना कार्य कर ले। सम्यग्दर्शन पाना दुर्लभ है। वह प्राप्त न हो सके तो 'आत्मा कोई अपूर्व है' उसके संस्कार डालना, अपूर्व आत्माकी रुचि करना, भावना करना, चिन्तवन करना, आत्मा एकको ही मुख्य रखना और देव–शास्त्र–गुरुको हृदयमें रखना—इतना तो जीव कर सकता है, अंतरमें इतना परिवर्तन कर सकता है।

बाल विभाग

पुण्य-पापकी विचित्रता

(श्री महावीरस्वामीके समय में श्री जम्बूस्वामीसे पूर्व हुए कामदेव पदवी धारक, तद्भव मोक्षगामी श्री जीवंधरस्वामीका चरित्र)

राजपुरी नगरीके राजा जीवंधर स्वयंकी रानीमें इतने आसक्त हुए कि उन्होंने अपना राज्य मंत्री काष्ठांगारको देकर विषयभोगमें लीन हो गये। इस ओर दुष्ट विचारसे काष्ठांगारने राजाको बंदी बनानेका आदेश दे दिया। यह बात मालूम होने पर राजाने गर्भस्थ रानीको केकीयंत्रमें बिठाकर आकाशमार्गसे अन्यत्र रवाना कर दिया। केकीयंत्रने रानीको स्मशानभूमिमें पहुंचा दिया। वहाँ पर जीवंधरकुमारका जन्म हुआ। दैवयोगसे एक देवीने आकर रानीको आश्वस्त किया कि पुत्रका लालन-पालन राजकुमारोचित होगा। इस ओर जीवंधरके पुण्यसे गंधोत्कट सेठ अपने मृत पुत्रका अंतिम संस्कार करने आये थे और अवधिज्ञानी मुनिके कथनानुसार उन्हें जीवंधरकी प्राप्ति होती है और घर पर आकर पुत्रको सुनंदा शेठनीको देते हैं। जीवंधरकुमार चंद्रमाकी भांति वृद्धि होने लगे। आर्यनंदी नामक मुनि भस्मक नामक रोगके शमन हेतु गंधोत्कट सेठकी भोजनशालामें आकर सारा भोजन खा लेते है फिर भी तृप्ति न होने पर जीवंधर अपने भोजनमेंसे कुछ भोजन देते है जिसका एक ग्रास खाने पर उनका रोग शमन हो गया फलरूप आर्यनंदी प्रत्युपकार हेतु जीवंधरको विद्वान बनानेका निर्णय करते है। पुण्योदयसे जीवंधर स्वयंवरमें गंधर्वदत्ताको जीत लेते है। एकबार एक कुत्तेने यज्ञसामग्री झूठी कर दी तो लोग उसे मार रहे थे उस समय जीवंधर उसे णमोकार मंत्र सुनाते है फलस्वरूप वह मरकर यक्ष होता है और मुश्किल समयमें स्मरण करने पर उपस्थित हो जाऊंगा ऐसा वचन देते है। पुण्योदयसे तीर्थवंदना करते रास्तेमें परोपकार करके उत्तमकुलकी कन्याके साथ विवाह होता है..... आगे...

सुरमंजरीसे विवाह करनेके पश्चात् जीवन्धर अपने माता-पिता सुनंदा एवं गंधोत्कटके साथ सुखपूर्वक रहे। फिर अपने मामा गोविन्दराजके पास गये। गोविन्दराज अनेक दिनोंसे अपने भानजे जीवन्धरको राजा बनानेकी योजनाओं पर विचार कर रहे थे। जीवन्धरके अपने घर पहुँचने पर गोविन्दराजके विचारोंको और गति प्राप्त हुई। इसी समय दुष्ट काष्ठांगारका पत्र राजा गोविन्दराजके पास पहुँचा। उसमें लिखा था कि ''महाराजा सत्यधरका मरण मदोन्मत्त हाथीके कारण हुआ था; तथापि मेरे पापोदयके कारण उनके मरणका कारण प्रजा मुझे मान रही है। अतः आप मुझसे मिलोगे तो मैं निशल्य हो जाऊँगा।''

पत्र पढकर दुष्ट काष्ठांगारके खोटे अभिप्रायका पता गोविन्दराजको चल गया। गोविन्दराजने भी अपनी कूटनीतिज्ञ चतुराईके साथ ''काष्ठांगारके साथ हमारी मित्रता हो गई हैं''; ऐसा ढिढोरा पिटवा दिया और अपनी सेनाके साथ राजपुरी नगरीके पास जाकर एक उद्यानमें ठहर गये।

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष—ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

वहीं गोविन्दराजने अपनी कन्या लक्ष्मणाके लिए स्वयंवर मंडपकी रचना की और घोषणा करा दी कि ''जो चन्द्रकयंत्रको भेदन करेगा, उसीके साथ लक्ष्मणाका विवाह संपन्न होगा।''

घोषणा सुनकर अनेक धनुर्धारी राजाओंने स्वयंवर मंडपमें आकर उस यंत्रको भेदन करनेका प्रयास किया; पर सफलता किसीको नहीं मिली। अंतमें जीवन्धर आलातचक्र द्वारा उसका भेदन करनेमें सफल हुए। इस प्रसंग पर ही राजा गोविन्दराजने जीवन्धरका यथार्थ परिचय सबको दिया—''जीवन्धर महाराजा सत्यधरके राजपुत्र और मेरे भानजे हैं।

जीवन्धरकुमारके इस परिचयसे दुष्ट काष्ठांगार अत्यन्त भयभीत हुआ तथा राजा गोविन्दराजको दिये निमंत्रण पर पश्चात्ताप करने लगा; तथापि उसने अन्य राजाओंके बहकावेमें आकर जीवन्धरके साथ युद्धकी घोषणा कर दी। फलस्वरूप युद्धणें काष्ठांगार मारा गया तब राजा गोविन्दराजने जीवन्धरका राजपुरी नगरीमें वैभवके साथ राज्याभिषेक किया; जिससे सबको आनन्द हुआ। तदनन्तर गोविन्दराजने अपनी कन्या 'लक्ष्मणा'का विवाह जीवन्धरके साथ हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न करा दिया।

राजा जीवन्धर नीति-न्यायपूर्वक राजपुरी नगरीमें राज्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् राजमाता विजया और सुनन्दा ने पद्मा नामक आर्यिकासे दीक्षा ग्रहण कर ली और आत्म-साधना करने लगी। राजा जीवन्धरने तीस वर्ष तक निर्विघ्न रीतिसे राज्य किया उनका प्रजासे पुत्रवत् व्यवहार था। प्रजा अत्यंत सुखी और प्रसन्न थी। राज्यका कर चुकाना प्रजाको दान देनेके समान आनंदकारी लगता था।

एक समय राजा जीवन्धर वसंत ऋतुमें अपनी आठों रानियोंके साथ जलक्रीडा करनेके पश्चात् उद्यानमें विश्राम कर रहे थे। तब वे देखते हैं कि एक वानरी अपने पति बन्दरका अन्य वानरीके साथ सम्पर्क देखकर रुष्ट और अप्रसन्न थी। उस वानरीको प्रसन्न करनेके लिए वानर अनेक चेष्टाएँ कर रहा था। बन्दर एक कटहलका फल वानरीको देना चाहा, इतनेमें ही

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी।
पर्याय कर्मोपाधिवर्जित हैं कही स्वाभाविकी॥१५॥

रक्षक मालीने आकर उस फलको छीन लिया। इस घटनाका राजा जीवन्धर पर विशेष प्रभाव पड़ा और उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा कि कटहलके फल समान राज्य है। मैं माली के समान हूँ और काष्ठांगार वानरके समान है।

बारह भावनाओंका चिंतवन करते हुए जीवन्धरने जिनमंदिरमें जाकर जिनेन्द्र भगवानकी पूजन की। वहीं चारण ऋद्धिधारी मुनिराजसे धर्मोपदेश सुननेके बाद अपने पूर्वभवके सम्बन्धमें पूछा।

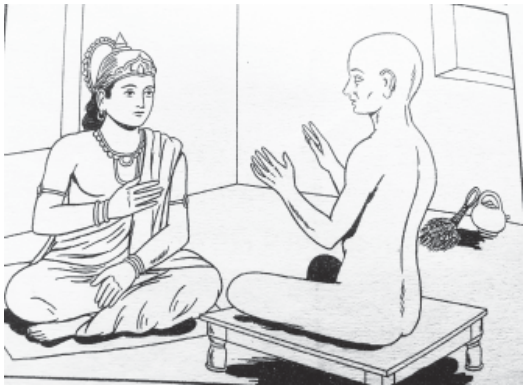

मुनिराजने बताया—''तुम पूर्वभवमें धातकीखंडके भूमितिलक नगरमें पवनवेग राजाके यशोधर नामके पुत्र थे। तुमने बाल्यावस्थामें क्रीड़ा करनेके लिए हंस के बच्चोंको पकड़ लिया था। पिताने तुम्हें अहिंसाधर्मका स्वरूप समझाया। उसके पश्चात् तुम्हें अपने उस कार्यका बहुत पश्चात्ताप हुआ। पिताके रोकने पर भी तुमने जिनेश्वरी दीक्षा धारण की। उस समय आपकी आठों पत्नियोंने भी आर्यिकाके व्रत धारण कर तुम्हारा अनुकरण किया था। जिससे तुमने आठों देवियों सहित स्वर्गमें देवपर्याय धारण की। देव आयु पूर्ण कर इस राजपुरी नगरीके राजा जीवन्धर हुए और वे आठों देवियाँ तुम्हारी रानियाँ हुई। तुमने पूर्वजन्ममें हंसके बच्चोंको माता-पिता और स्थानसे अलग कर पिंजडेमें बन्द किया था। उसके परिणामस्वरूप तुमको अपने माता-पितासे अलग होना पड़ा और बन्धनमें रहना पड़ा।''

मुनिराजसे अपने पूर्वभवोंका वृत्तांत सुनकर राजा जीवन्धरकी वैराग्य भावना वृद्धिंगत हुई और उन्होंने राजमहेलमें जाकर गंधर्वदत्ताके पुत्र सत्यधरको राज्यभार सौंपा और भगवान महावीरके समवसरणमें जिनदीक्षा धारण की। आपकी आठों रानियोंने भी अपना शेष जीवन आत्मकल्याण करनेमें लगा दिया। मुनिश्री जीवंधरस्वामीने घोर तपश्चरण किया और एक दिन आत्मस्थिरतापूर्वक केवलज्ञानकी प्राप्ति कर अंतमें रेवानदीके किनारे सिद्धवरकूट (मध्यप्रदेश)से सिद्धपद प्राप्त किया, उन्हें हमारा नमस्कार हो।

हैं कर्मभूमिज, भोगभूमिज—मनुजकी दो जातियाँ।
अरु सप्त पृथ्वीभेदसे हैं सप्त नारक राशियाँ।।१६।।

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-३० से ८-३० : बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ विशेष धार्मिक कार्यक्रम ❀

हमारे परम तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके वार्षिक समाधिदिन निमित्त सोनगढ़में पंचाह्निक विशेष धार्मिक कार्यक्रम, मार्गशीर्ष कृष्णा ३ ता. ३०-११-२०२३, गुरुवारसे मार्गशीर्ष कृष्णा ७ ता. ४-१२-२०२३, सोमवार तक, रखा गया है। यह 'गुरु-उपकारस्मृति'का अवसर श्री पंचपरमेष्ठिमंडलविधानपूजा, जिनेन्द्र एवं गुरुभक्ति, पू. गुरुदेवश्रीके टेपप्रवचन इत्यादि अध्यात्म-ज्ञान-वैराग्य-भक्त्युपासनाप्रधान धार्मिक कार्यक्रम पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिनके गुरु-भक्तिभीगे मार्गदर्शन अनुसार वीतराग देव-गुरुकी भक्ति एवं वीतराग तत्त्वज्ञानकी कल्याणी उपासनापूर्वक सादगीसे मनाया जायेगा।

❀ भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य 'आचार्यपदवी दिन' समारोह ❀

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य 'आचार्यपदवी दिन' पोष कृष्णा ८ ता. ४-१-२०२४, गुरुवारको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवके विशेष पूजन-भक्तिके कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा।

❀ प्रतिष्ठा मंडप भूमिशुद्धि, खननविधि तथा शिलान्यास विधि संपन्न ❀

आगामी प्रतिष्ठा महोत्सवका मंडप जिस भूमि पर बनने जा रहा है उसमें निर्मापित होनेवाले (जिस वेदी पर विधि विधान अध्यक्ष, अखंड दीप, नांदीविधान कलश, प्रतिष्ठेय भगवंत विराजमान होनेवाले है) उसकी भूमिशुद्धि, खननविधि तथा शिलान्यास विधि ता. २३-११-२०२३ के दिन प्रातः प्रमुख श्री हसमुखभाई वोरा एवं ट्रस्टी श्री राजेशभाई झवेरीके करकमलों द्वारा मुमुक्षुगणकी उपस्थितिमें हर्षोल्लास सह संपन्न हुई। इस प्रसंगके समग्र शास्त्रोक्त विधिविधान प्रतिष्ठाचार्य श्री सुभाषभाई शेठ द्वारा किये गये थे।

श्री पार्श्वनाथ भगवान, श्री सीमंधर भगवान, श्री धातकीविदेही भावी जिनवर प्रतिमाओंका सुवर्णपुरीमें भव्य स्वागत

जो शुभ-मंगल प्रतिष्ठाकी मुमुक्षु समाज उत्सुकतासे राह देख रहा था वह मंगल घड़ी नजदीक आ रही है। इस प्रतिष्ठा अंतर्गत प्रवचन मंडपमें विराजमान होनेवाले तीन भगवान–भूतकालके श्री पार्श्वनाथ भगवान, वर्तमानके श्री सीमंधर भगवान और भविष्यके घातकीखंडके भावी तीर्थंकरकी प्रतिमाका दि. १०-११-२०२३के दिन सोनगढमें आगमन हुआ था। प्रातः जिनेन्द्र पंचकल्याणक विधान पश्चात पूज्य गुरुदेवश्रीका कल्याणकारी सीडी प्रवचन हुआ। बादमें सभी मुमुक्षुगण जंबूद्वीप-बाहुबली केम्पसमें गये जहाँ भगवानको लाया गया था। वहाँ अंतरके उल्लास और भक्ति एवं अक्षतसे भगवानकी बधाई की गई। तत्पश्चात् शोभायात्रापूर्वक तीनों भगवंतोंको स्वाध्यायमंदिर संकुलमें लाया गया था। भगवानको समवसरण मंदिरके आगे बनाये गये स्टेज पर पांच दिन तक दर्शन हेतु रखा गया था। तीनों भगवंतोंके दर्शनसे मुमुक्षुगणमें प्रतिष्ठाका उत्साह, उमंग उमड़ रहा था। इस शोभायात्रामें जगह-जगह पर प्रतिष्ठा सम्बन्धित विविध बेनरोंसे सुशोभित किया गया था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट-सोनगढ द्वारा आयोजित

श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवकी

* मंगलमय पत्रिका लेखन विधि *

श्री जम्बूद्वीपके शाश्वत जिनेन्द्रवृंदकी प्रतिष्ठा और श्री बाहुबली मुनीन्द्रकी प्रतिष्ठापन महोत्सव तथा श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरके उपरके भागमें विराजमान होनेवाले चार बालयति तीर्थंकर और प्रवचनमंडपमें विराजमान होनेवाले तीन भगवंतोंकी प्रतिष्ठा श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव (ता. १९-१-२०२४ से २६-१-२०२४)की मंगल पत्रिका लेखनविधि ता. ११-११-२०२३ धनतेरसके मंगलदिन हजारों मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें अति हर्षोल्लास सह संपन्न हुई। सुबह जिनेन्द्र पंचकल्याणक पूजन बाद सभी मुमुक्षुओं ट्रस्टी श्री नेमिषभाईके निवासस्थान गये थे वहाँ भावपूर्वक अक्षतसे पत्रिकाकी बधाई करनेके बाद पत्रिकाको भव्य शोभायात्रापूर्वक गाजे-बाजेके साथ मंदिरके प्रांगणमें लायी गयी। पूज्य गुरुदेवश्रीके सीडी प्रवचनके बाद पत्रिकाको भक्तिपूर्वक निमंत्रणकर्ता परिवारके सदस्य कि जिसमें श्री नेमिषभाई धर्मध्वज लहराते हुए आगे चल रहे थे, पीछे सौधर्म इन्द्र और सौजन्यकर्ता परिवारके सदस्य पालखीमें पत्रिकाको लेकर चल रहे थे, प्रतिष्ठा महोत्सवके मंगल-मधुर गीत गुंज रहे थे। इस प्रकार भक्तिभावपूर्वक निमंत्रण पत्रिकाको स्टेज पर लाया गया था। इस प्रसंग पर मुमुक्षुओंका उत्साह और उमंग उमड़ रहा था। तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र श्री हितेनभाई शेठ द्वारा पत्रिकाका भाववाही वांचन किया गया पश्चात् सर्वप्रथम पत्रिका लेखनविधिका लाभ सौजन्यकर्ता परिवारको मिला था। पश्चात् लेखनविधि भक्तिके मंगल सूर और अंतरके आनंदोल्लास सह संपन्न हुई। इस पत्रिका लेखनविधिके सौजन्यका लाभ श्री शारदाबेन शांतिलाल शाह परिवार तथा श्रीमती कनकबेन अनंतराय शेठ परिवारको मिला था। इस प्रसंग पर उनकी ओरसे स्वामीवात्सल्य भी रखा गया था।

(१२४)

प्रौढ व्यक्तिके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये प्रश्नोंका सही उत्तर लिखे।

(1) एक जीवके मुखमें अमृत है फिर भी दुःखी है वह कौन? .....

(2) एक जीव जो कभी खाता नहीं फिर भी हमेशा सुखसे जीवित है वह कौन? .....

(3) एक सम्यग्दृष्टि है फिर भी नहीं है स्वर्गमें, नहीं है मनुष्यमें, नहीं है तिर्यंचमें और नहीं है नरकमें तो वह कहाँ होंगे? .....

(4) जंगलमें जिसका जन्म, अंजना जिनकी माता वह मोक्षगामी महात्मा कौन? .....

(5) महावीर प्रभुके सबसे बड़े शिष्य जो ब्राह्मण थे फिर भी मोक्षको प्राप्त हुए? .....

(6) जिनदीक्षा लेनेवाले आखरी मुकुटबद्ध राजा, जिन्होंने भद्रबाहुस्वामीके पास दीक्षा ली? वे राजा .....

(7) एक जीव वीतराग है, उसका आयुष्य पूर्ण हो गया फिर भी मोक्षको प्राप्त नहीं हुआ? वह ..... जीव।

(8) एक जीव ऐसा कि जो कभी खाना नहीं खाता, पानी नहीं पीता फिर भी लाखों वर्षों तक जीवित रहता है? वह .....

(9) एक मनुष्य जिसके पास एक पैसा भी नहीं फिर भी वह गरीब नहीं है? वह .....

(10) कुंदकुंदस्वामी, जंबूस्वामी, अकलंकस्वामी, मरुदेवी माता इनमेंसे कौनसा जीव उसी भवमें मोक्षको प्राप्त हुए वह कौन? .....

नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर सही (✓) या गलत (×) में लिखें।

(1) एक जीव छठवीं नरकसे निकलकर मनुष्य होकर बादमें मुनि हुआ। (✓ / ×)

(2) एक जीवने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया और चौथी नरकमें गया। (✓ / ×)

(3) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर ज्योतिषी देवका इन्द्र हुआ। (✓ / ×)

(4) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर दूसरी नरकमें गया। (✓ / ×)

(5) सातवीं नरकसे निकलकर जीव मनुष्य हुआ। (✓ / ×)

(6) प्रथम, दूसरी, तीसरी नरकसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर हो सकता है।(✓/×)

(7) भरतक्षेत्रका कोई जीव सीमन्धर प्रभुके पास गया और उसने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। (✓ / ×)

(8) एक जीव तीसरे गुणस्थानमें मरकर देवलोकमें देव हुआ। (✓ / ×)

(9) एक जीव आत्माको पहिचानकर मुनि हुआ, क्षपकश्रेणी लगाकर स्वर्गमें गया। (✓ / ×)

(10) चौथी नरकसे निकला जीव मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें गया। (✓ / ×)

प्रौढ़के लिये दिये गये नवम्बर-२०२३के प्रश्नोंके उत्तर

(1) उपगूहन
(2) प्रशम
(3) अमूढ़दृष्टि
(4) संवेग
(5) अनुकंपा
(6) निःकांक्षित
(7) सयोगी केवली
अयोगी केवली
(8) प्रभावना
(9) ज्ञानी
(10) मिथ्यात्वके
(11) स्थितिकरण
(12) 40
(13) निःशंकित
(14) आरंभत्याग
(15) प्रमत्त - अप्रमत्त
(16) चार
(17) जातिस्मरण
(18) आस्रव
(19) 32
(20) उपशांतमोह

बालकोंके लिये दिये गये
नवम्बर - २०२३ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) शांतिनाथ
(२) अभिनंदननाथ
(३) अनंतनाथ
(४) वासुपूज्य
(५) श्रेयांसनाथ
(६) पद्मप्रभ
(७) विमलनाथ
(८) मल्लिनाथ
(९) शीतलनाथ
(१०) अजितनाथ
(११) सुमतिनाथ
(१२) पारसनाथ
(१३) चंद्रप्रभु
(१४) धर्मनाथ
(१५) पुष्पदंत
(१६) संभवनाथ
(१७) महावीर
(१८) अरहनाथ
(१९) नेमिनाथ
(२०) मुनिसुव्रतनाथ
(२१) सुपारसनाथ
(२२) ऋषभनाथ
(२३) कुंथुनाथ
(२४) नमिनाथ

(१२४)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये प्रश्नोंके छहढालाकी तीसरी ढालमेंसे मिलेंगे।

(१) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र जीवको ..... कारण है।

(२) जीव मोक्षके मार्गमें चले तो ..... की प्राप्ति होगी।

(३) सत्य मोक्षमार्ग ..... है।

(४) निश्चयनयके आश्रयसे मुनिवर ..... की साधना करते हैं।

(५) रागसहित व्यवहार रत्नत्रय वह सत्यार्थ ..... नहीं है।

(६) राग वह आत्माका स्वभाव .....

(७) शुभाशुभ राग वह ..... कारण है।

(८) सम्यक्चारित्र वह ..... कारण है।

(९) स्वद्रव्यके ग्राहक ..... हो।

(१०) संपूर्ण मोक्षमार्ग ..... के आश्रित ही है।

(११) आत्माको जाने बिना उसकी ..... नहीं हो सकती है।

(१२) चौथे गुणस्थानमें ..... चारित्र होता है।

(१३) उपयोगकी शुद्धता बढ़नेसे सच्ची ..... होती है।

(१४) आत्मस्वरूपमें लीनता वह ..... है।

(१५) सबसे कीमती तीन रत्न (१) ..... (२) ..... (३) .....

(१६) परसे भिन्न आत्माकी रुचि वह ..... है।

(१७) शुद्धात्माके आश्रयसे सच्चा ..... प्रगटता है।

(१८) संख्या अपेक्षासे बहिरात्मा ..... है, अंतरात्मा ..... है और परमात्मा ..... है।

(१९) अरिहंत भगवानको ..... और ..... गुणस्थान होते हैं।

(२०) उत्तम अंतरात्मा ..... से ..... गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनिको होता है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• जैसे रोटीके आटेको गूँदते हैं वैसे ही आत्माको ज्ञानसे मथना चाहिए, उसे भाव-भासन होना चाहिए। भगवान कहते हैं इसलिए नहीं, बल्कि उसे स्वयंको ऐसा भाव-भासन होना चाहिए कि ''मैं ऐसा महिमावन्त चैतन्य पदार्थ हूँ'' - इसके सन्मुख होने पर ही संसारके दुःखोंसे छुटकारा होगा; ऐसा महसूस होना चाहिए।६००।

• प्रश्न :- शुद्धनयका पक्ष माने क्या ?

उत्तर :- शुद्धनयका पक्ष अर्थात् शुद्धात्माकी रूचि होना। यद्यपि अभी अनुभव नहीं हुआ है पर ऐसी रूचि हुयी है कि वह जीव अनुभव करेगा ही। परन्तु इससे कोई अपना बचाव करे; गुण न हो व मान ले - ऐसा नहीं है। पर केवली ऐसा जानते हैं कि इस जीवकी रूचि ऐसी है कि वह अनुभव करेगा ही। उस जीवके वीर्यमें ज्ञायकका जोर वर्तता है।६०१।

• प्रश्न :- तिर्यंचको अधिक ज्ञान न होने पर भी उसे आत्मा दृष्टिगत हो जाता है और हमें इतनी महेनत करने पर भी आत्मा क्यों ग्राह्य नहीं होता ?

उत्तर :- जिस जातका (ज्ञानमें) प्रमाण आना चाहिए सो नहीं आता। ज्ञानमें आत्माका जितना वजन होना चाहिए वह नहीं आता, ज्ञानमें उस-प्रति जितना जोर होना चाहिए उतना जोर नहीं होता। जिस हद तक स्पृहा व आशा छूटनी चाहिए सो नहीं छूटती; अतः कार्य नहीं होता, आत्मा-ग्रहण नहीं होता।६०२।

• प्रश्न :- सम्यग्दर्शन नहीं होता यह पुरुषार्थकी कमजोरी ही समझी जाए ?

उत्तर :- विपरीतताके कारण सम्यग्दर्शन रुकता है, व पुरुषार्थकी कमजोरीके कारण चारित्र रूकता है। इसके बजाय पुरुषार्थकी कमजोरीको सम्यक्त्व न होनेका कारण मानना तो पर्वत जैसे महादोषको राई जितना अल्प बनाना है। ऐसा जीव विपरीत मान्यताके पर्वत-सम महादोषको नहीं छेद सकता।६०३।

• प्रश्न :- आत्माको क्षमा कैसे करें ?

उत्तर :- अनन्तगुणमय - ज्ञानानदमय आत्माके स्वरूपको पहचानना कि उसमें कोई विभाव नहीं है। आत्मा तो क्षमाका सागर-शक्तिका सागर है। अनन्तकालसे अनन्त भव हुए, चाहे जितने निगोदके भव हुए फिर भी आत्मा तो क्षमाका भंडार है – इसको पहिचानना ही सच्ची क्षमा है।६०४।

३६
आत्मधर्म
दीसम्बर-२०२३
अंक-४ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-12-2023
Posted on 5-12-2023

Registered Regn. No. BVR-368/2021-2023
Renewed upto 31-12-2023
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org